पारिजात
पुष्पार्चन

रिजात अध्ययन केन्द्र

संकलन कार्य :

परिजात अध्ययन केन्द्र

बोडी, जम्मू के प्रकाशन विभाग द्वारा
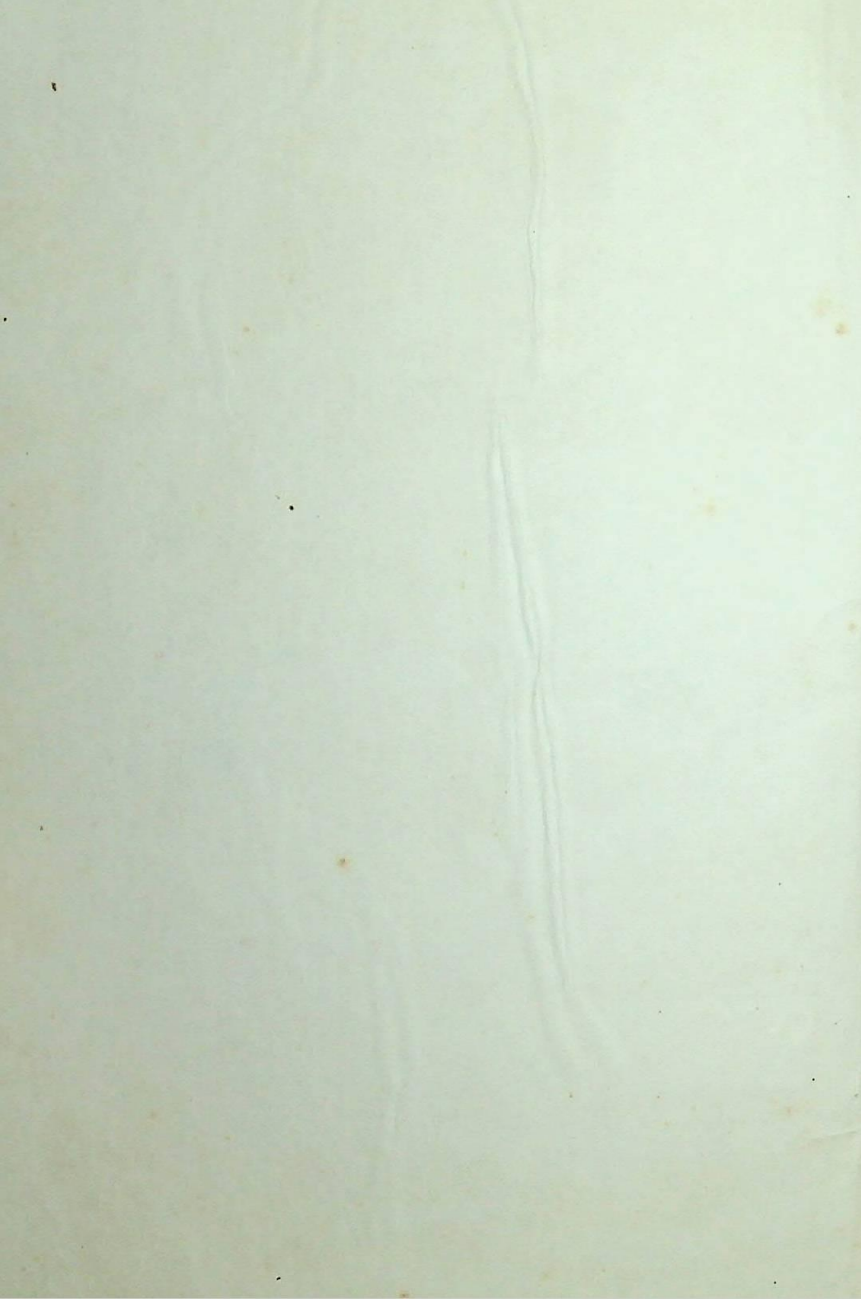
पारिजात

पुष्पार्चन

संकलनकर्त्ता :

पुष्करनार्थ शर्मा

प्रधान सेवक अध्ययन केन्द्र

पारिजात अध्ययन केन्द्र

बोडी, जम्मू

प्रकाशक :
पारिजात अध्ययन केन्द्र
बोडी, जम्मू

मूल्य : 25-00 रुपये

प्रथम संस्करण : जनवरी, 1995

मुद्रक :
त्यागी प्रोसेस
2609/194, त्रीनगर, दिल्ली-110035

प्राक्कथन

पूरे एक वर्ष के पश्चात् आज पुनः पारिजात अध्ययन केन्द्र आप के सम्मुख अपनी शुभकामनाओं के साथ उपस्थित है। पाठकों के अनुरोध पर 'पारिजात' का वार्षिक अंक इस बार अर्थ सहित प्रकाशित किया गया है। हमारे जीवन के आधिभौतिक और आध्यात्मिक एवं सर्वविध अभ्युदय के लिए परमावश्यक है कि हम जिन मन्त्रों का भगवत् उपासना के रुप में पाठ करते हैं उनका उच्चारण शुद्ध हो और अर्थ स्पष्ट, ताकि जो हम बोलें उसका आशय समझकर भावविभोर हो जाएँ। 'पारिजात' पुस्तिका एक ऐसी पुष्पमाला है जिस के सुरभित एवं सुगन्धित पुष्प अनेक सुरवाटिकाओं से चुनचुन कर, पारिजात नामसूत्र में पिरोकर आपके घरों में भेजी जा रही है, ताकि इसकी सुरभि से आप सपरिवार पुनीत हो जायें।

आशा है कि इस संकलन को आप कण्ठस्थ करके हर दिन भगवान शंकर की उपासना हेतु प्रयोग में लाएँगे क्योंकि भारतीय दर्शन, संस्कृति और शास्त्रीय दृष्टिकोण से भगवान शंकर हमारे आराध्य देव हैं। वे आशुतोष हैं–स्वभाव से ही 'एवमस्तु' कहने वाले हैं। कदाचित हमारी प्रार्थना सुनकर 'एवमस्तु' कह दिया तो हम पार लग जायें ! मेरी कामना है कि–

अनल संभृतकान्ति दधत्सदा, रुचिरमारचिता स्पदमीक्षणम्।
सुमतये विधुरोपकृतिप्रियो, भवतु वो भगवान् भगवानिव।।

अर्थात्–सदैव ध्यान में निमग्न होने के कारण आलस्यरहित, सदैव अनुदम शोभावती श्री से आश्रित नेत्रों वाले और दीनों का उपकार करने वाले भगवान् बुद्धदेव के समान, सदैव अग्नि से उज्जवलित कान्ति वाले और मनोहर काम देव को भस्म करने वाले एवं त्रिपुरासुर को दग्ध करते समय श्री विष्णु को बाण बनाने वाले भगवान सदा शिव आप लोगों को भक्ति रुपी सुधा के रस में अनुराग रखने वाली सुन्दर मति प्रदान करें।

विनीत
पुष्करनार्थ शर्मा

'पारिजात' परिभाषा एवं उद्देश्य

समुद्र मंथन से प्राप्त चौदह अनमोल रत्नों में से सर्वोत्कृष्ट रत्न 'पारिजात' का मात्र कर्म भक्त जनों को अभीष्ट वर प्रदान करना, उनकी कामनाओं को पूर्ण करना एवं सर्वविध उद्धार करना है। इस कल्पवृक्ष की सुयोग्यता देखते हुए भगवान नारायण यहां तक कि भगवान आशुतोष ने 'पारिजात' नाम अपने लिए सहर्ष स्वीकार किया। अत: आनन्दनगर अध्ययन केन्द्र ने इसके इन ही गुणों के कारण एवं केन्द्र के उद्देश्यों के अनुरुप गुणों के कारण ही पारिजात नाम का चयन किया जो आज अपनी आभा युक्त किरणें भक्तों पर बिखेरे हुये है।

पारिजात अध्ययन केन्द्र की स्थापना कुछ ध्येय सामने रखकर कर की गई है, जिनकी प्राप्ति के लिए इसके कार्यकर्ता विशेष रुप से कृत संकल्प है। मुख्य ध्येयों की सूचि इस प्रकार है–

१. हिन्दू समाज में सुप्त धार्मिक चेतना को जागृत करना।

२. वर्तमान की विपरीत परिस्थितियों को अपने धर्म, अर्थ और समाज की उन्नति के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना।

३. समाज में व्याप्त कुप्रथाओं एवं कुरीतियों को समूल नष्ट करना और समाज के प्रति युवकों में उनके उत्तरदायित्व की भावना को उजागर करना।

तथा

धार्मिक महोत्सवों एवं सम्मेलनों द्वारा सामाजिक एकता का भाव सुदृढ़ करना।

विषय-सूची

श्री गुरुस्तुतिः

ॐ अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्
तत पदं दर्शित येन तस्मै श्री गुरुवेः नमः।

अर्थ–जिन से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड चर और अचर सहित व्याप्त है, जिन्होंने उस परम् पद को सुगम किया, उन श्री गुरुदेव को नमस्कार है।

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजन शलाकया
चक्षुरुन्मीलितम् येन, तस्मै श्री गुरुवेः नमः।

अर्थ–जिन्होंने अज्ञान रुपी अन्धकार में अन्धी आँखों को ज्ञानांजन की सलाई से सप्रकाश बनाया, उन श्रीं गुरुदेव को नमस्कार है।

अनेक जन्मसम्प्राप्तम् कर्म बन्ध विदाहिने
आत्मज्ञान प्रदानेन तस्मै श्री गुरुवेः नमः।

अर्थ–अनेक जन्मों से प्राप्त कर्मबन्धन को, आत्मज्ञान प्रदान करके जलाने वाले गुरुदेव को नमस्कार है।

शोषनम् भव सिन्धोश्च ज्ञापनं सार संपदा
गुरोः पादोऽदकम् सम्यक, तस्मै श्री गुरुवे नमः।

अर्थ–संसार रुपी सागर का सूख जाना और सार तत्त्व की संपदा को उपलब्ध होना श्री गुरु के चरणोऽदक से ही सम्भव है उन श्री गुरु को नमस्कार है।

न गुरोरधिकं तत्त्वम् न गुरोरधिकं तपः
तत्त्व ज्ञानात्परम नास्ति तस्मै श्री गुरुवेः नमः।

अर्थ–गुरु से अधिक कोई तत्त्व नहीं, गुरु से अधिक कोई तप नहीं, तत्त्वज्ञान से परे कोई नहीं ऐसे उन श्री गुरु को नमस्कार है।

मन्नाथः श्री जगन्नाथो मद्गुरुः श्री जगद्गुरु
मदात्मा सर्व भूतात्मा तस्मै श्री गुरुवेः नमः।

अर्थ—मेरे स्वामी श्री जगन्नाथ हैं, मेरे गुरु श्री जगद्गुरु, मेरा आत्मा समस्त प्राणिमात्र का आत्मा है ऐसे उन श्री गुरुदेव को नमस्कार है।

ज्ञानशक्ति समारुढः तत्त्वमाला विभूषितः
भुक्ति मुक्ति प्रदाता व तस्मै श्री गुरुवेः नमः।

अर्थ—ज्ञान शक्ति से समारुढ, तत्त्वरुपी माला से विभूषित, भुक्ति (सांसारिक सुख) एवं मुक्ति (मोक्ष) देने वाले श्री गुरुदेव को नमस्कार है।

गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परम् दैवतम्
गुरोः परतरम् नास्ति, तस्मै श्री गुरुवेः नमः।

अर्थ—गुरु आदि और अनादि (दोनों) है, गुरु देवों के भी देव हैं, गुरु से भिन्न कोई नहीं उन श्री गुरु को नमस्कार है।

नमामि सद्गुरुम् शान्तम् प्रत्यक्षम् शिवरुपिनं
शिरसा योग पीठस्थम् धर्म कामार्थ सिद्धये।

अर्थ—जिन्होंने धर्म, अर्थ तथा काम की सिद्धि के हेतु सिर से योगासीन कराया, जो शान्त साक्षात् शिवरुप है ऐसे सद्गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ।

श्री गुरुम् परमानन्दं वन्दाम्यानन्द विग्रहम्
यस्य सान्निध्य मात्रेण चिदानन्दायते पुमान्।

अर्थ—मैं उस परमानन्द की वन्दना करता हूँ जो आनन्द का विस्तार करने वाले हैं और जिन के सान्निध्य मात्र से मनुष्यों को चिदान्द की प्राप्ति होती है।

नमोऽस्तु गुरुवेः तस्मा इष्ट देव स्वरुपिने

यस्य वागमृतम् हन्ति विषं संसार संज्ञकम्।

अर्थ–जिसकी वाणी रुपी अमृत संसार नामक विष को समाप्त करता है, उस इष्ट देव स्वरुप गुरु को नमस्कार है।

श्री गुरुं ज्ञान सत्सिन्धुम् दीन बन्धुं दयानिधिं

देवी मन्त्र प्रदातारं ज्ञानानन्दम् नमाम्यहम्।

अर्थ–जो ज्ञान तथा यर्थाथता के सागर हैं दीनबन्धु हैं, दयानिधि हैं, दिव्यमन्त्र के प्रदाता हैं उन ज्ञानानन्द परमगुरु को मैं नमस्कार करता हूँ।

नमस्ते नाथ भगवन् शिवाय गुरुरूपिणे

विद्यावतार संसिधै स्वीकृतानेक विग्रहः।

अर्थ–हे नाथ, हे भगवन्, हे शिव, हे विद्यावतार एंव अनेक विस्तारों को स्वीकार करने वाले श्री गुरुरूप, आपको नमस्कार है।

नवाय नवरूपाय परमार्थैक रूपिने

सर्वज्ञान तमोभेदमानवे चिदनायते।

अर्थ–नित् नवीन रुप धारण करने वाले, परम लक्ष्य के एकमात्र स्वरूप, समस्त ज्ञानस्वरूप, (अज्ञान के) अन्धकार को दूर करने वाले सूर्य, तथा बुद्धि को सत्पथ पर चलाने वाले आपको नमस्कार है।

विवेकिनां विवेकाय प्रकाशाय प्रकाशिनाम्

ज्ञानिनां ज्ञानरूपाय विमर्शाय विमर्शिनाम्।

अर्थ–हे गुरुदेव, आप विवेकियों में विवेक, प्रकाशस्रोतों के प्रकाश, ज्ञानियों के ज्ञानतत्त्व तथा विमर्शियों के विमर्श हैं।

ध्यानमूलम् गुरोमूर्त्ति पूजामूलं गुरोपदम्

ज्ञानमूलम गुरोर्वाक्यम् मोक्ष मूलं गुरोकृपा।

अर्थ–गुरुमूर्ति ही ध्यान का मूल है, पूजा का मूल गुरुचरण हैं, ज्ञान का मूल गुरुवाक्य तथा मोक्ष का मूल गुरु कृपा है।

ब्रह्मानन्दम् परम् सुखदम् केवलम् ज्ञानमूर्तिम्
द्वन्द्वातीतम् गगन सदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्
एकं नित्यम् विमलमचलं सर्वधीसाक्षिमूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सदगुरुं तम् नमामि ॥

अर्थ–ब्रह्मानन्दस्वरुप परम सुखदायक, विशुद्ध ज्ञानमूर्ति आकाशवत् व्यापक (तत्त्वम् असि) जैसे महान वाक्यों को दर्शाने वाले, अद्वितीय, शाश्वत, मलविक्षेप आदि दोषों से रहित, षड्भावविकारों से रहित, तीनों गुणों से परे उस सद्गुरु को नमस्कार है।

ॐ नमः शिवाय

तस्मै नमः परम कारण कारणाय
दीप्तोज्जलज्वलित्त पिङ्गललोचनाय
नागेन्द्रहार कृतकुण्डल भूषणाय
ब्रह्मेन्द्रविष्णु नमिताय नमः शिवाय ॥

अर्थ–जो कारण के भी परम कारण हैं, अति दीप्तिमान उज्जवल नेत्रों वाले हैं, सर्पराजों के हार–कुण्डल आदि से भूषित हैं, तथा जिनके सामने ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र आदि झुकते हैं उन श्री शंकर को मैं नमस्कार करता हूँ।

सर्वेश्वरत्वे सति भस्मशायिने
उमापतित्वे सति चोर्ध्वरेतसे

वित्तेश भृत्येसति चर्मवाससे

निवृत्त रागाय नमः तपस्विने ॥

अर्थ–सर्वेश्वर होने पर भी भस्म में सोने वाले, उमापति होने पर भी अखण्ड ब्रह्मचारी हैं, कुबेर जैसे सेवक रखते हुए भी गजचर्म पहनने वाले, उस राग से निवृत्त तपस्वी को नमस्कार।

गोरीश्वराय भुवनत्रय कारणाय

भक्तिप्रियाय भवभीति हर भवाय

शर्वाय दुःख शमनाय वृषध्वजाय

रुद्राय काल-दहनाय नमः शिवाय।

अर्थ–गौरीपति, तीनों भुवनों के मूलकारण, भक्तिप्रिय, संसार रुपी भय के नाशक, भव दुःख हारी शर्व, वृषध्वज रुद्र, काल के भी संहारक भगवान शिव को नमस्कार।

श्री मत्प्रसन्न शशि पन्नग भूषनाय

शैलेन्द्रजावदन चुम्बित लोचनाय

कैलास मन्दर महेन्द्र निकेतनाय

लोक त्रयार्ति हरणाय नमः शिवाय।

अर्थ–शोभायमान एवं निर्मलचन्द्र तथा सर्प ही जिनके भूषण हैं, पार्वती जी अपने मुख से जिनके लोचनों का चुम्बन करती हैं, कैलास और महेन्द्रगिरि जिनके निवासस्थान हैं तथा जो त्रिलोकी के दुःख दूर करने वाले हैं उन श्री शंकर को नमस्कार करता हूँ।

लम्बत्सपिङ्गल जटा मुकुटोत्काय

दंष्ट्राकराल विकटोत्कट भैरवाय

व्याधाजिनाम्बरधराय मनोहराय

त्रैलोक्यनाथ नमिताय नमः शिवाय।

अर्थ–जो लटकती हुई पिंङ्गलवर्ण जटाओं के सहित मुकुट धारण करने से उत्कट जान पड़ते हैं, विकराल दाढ़ों के कारण जो अति विकट और भयानक प्रतीत होते हैं, जो व्याघ्र-चर्म धारण किए हुए हैं, जो अति मनोहर हैं तथा लोकों के अधीश्वर जिन के सामने झुकते हैं उन शंकर जी को प्रणाम है।

दक्ष प्रजापति महामख नाशकाय

क्षिप्रं महात्रिपुर दानव घातनाय

ब्रह्मोर्जितो र्ध्वंग करोटि निकन्तनाय

योगाय योग नमिताय नमः शिवाय।

अर्थ–दक्ष प्रजापति के महायज्ञ को ध्वसं करने वाले, महान त्रिपुरासुर को शीघ्र मारने वाले, ब्रह्मा के ऊर्ध्वमुख का छेदन करने वाले योगस्वरुप, योग से नमस्कृत शिव को मैं नमस्कार करता हूँ।

संसार सृष्टि घटना परिवर्तनाय

सिद्धोरगग्रह गणेन्द्र निषेविताय।

रक्षः पिशाचगण सिद्ध समाकुलाय

शार्दूल चर्म वसनाय नमः शिवाय।

अर्थ–जो संसार रचना का परिवर्तन करने वाले हैं, सिद्ध, सर्प, ग्रहगण तथा इन्द्रादि से सेवित हैं, जो राक्षस, पिशाचगणों से घिरे रहते हैं तथा जो व्याघ्र चर्म धारण किये हुए हैं, उन श्री शंकर को नमस्कार करता हूँ।

आदित्य सोमवरुणानिल सेविताय
यज्ञाग्नि होत्र वर धूम निकेतनाय
ऋक् सामवेद मुनिभिः स्तुति संयुताय
गोपाय गोपनमिताय नमः शिवाय।

अर्थ–जो सूर्य, चन्द्र, वरुण और पवन से सेवित हैं, यज्ञ और अग्निहोत्र के धूम में जिनका निवास है, ऋक, सामादिवेद और मुनिजन जिनकी स्तुति करते हैं उन नन्दीश्वर पूजित गौओं का पालन करने वाले महादेव जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

विनय

ॐकारेण विहीनस्य नित्यमुद्विग्न चेतसः
ताप त्रयाग्नि तप्तस्य त्राण कुरु महेश्वरः।१।

अर्थ–हे महेश्वर, मुझ ओंकार विहीन, नित्य उद्विग्न चित्त तथा तीन प्रकार की तापाग्नि से तपाये को बचाओ।

मदनोरग दष्टस्य क्रोधाग्नि ज्वलितस्य च
लोभ मोहादि सक्तस्य त्राणं कुरु महेश्वरः।२।

अर्थ–हे महेश्वर, मुझ कामरुपी सर्प से काटे हुए, क्रोधाग्नि से जलते हुए, तथा लोभ एवं मोह आदि में आसक्त का परित्राण करो।

भटैनानाविधेर्घोरै र्यमस्याज्ञा विधायकैः
तां दशां नीयमानस्य त्राणं कुरु महेश्वरः।३।

अर्थ–हे महेश्वर, यमराज की आज्ञा का पालन करने वाले नाना

प्रकार के भयंकर रुप धारी किंकरों द्वारा उस दशा (परलोक की ओर) जाए जाते हुए मेरा परित्राण करो।

काय पोषण सक्तस्य, रोग शोका कुलस्य च

भवार्णव निमग्नस्य, त्राणं कुरु महेश्वरः।४।

अर्थ–हे महेश्वर, मुझ शरीर के पोषण में आसक्त, रोग एवं शोक से आकुल तथा संसार सागर में डूबे हुए का परित्राण करो।

दुष्टस्य नष्ट चित्तस्य, शिवमार्गो ज्यिफतस्य च

अनाथस्य जगन्नाथ त्राणं कुरु महेश्वरः।५।

अर्थ–हे जगन्नाथ, है महेश्वर, मुझ दुष्ट, नष्ट चित्त, शिव मार्ग को छोडे हुए अनाथ का परित्राण करो।

तृष्णा श्रृंखलयानाथ, बद्धस्य भयपंजरे

कृपार्द्र दीनचित्तस्य त्राणं कुरु महेश्वरः।६।

अर्थ–हे नाथ, हे महेश्वर, मुझ तृष्णा की जंजीर में बंधकर, भय के पिंजरे में पडे हुए दीनचित्त का कृपार्द्र होकर परित्राम करो।

हा हतोस्मि विनष्टोस्मि दष्टोस्मि चपलेन्द्रियैः

भवार्णव निमग्नोस्मि त्राणं कुरु महेश्वरः।७।

अर्थ–हाय मारा गया हूँ, नष्ट हो गया हूँ। चंचल इन्द्रियों द्वारा काट दिया गया हूँ, संसार सागर में डूब गया हूँ, मेरा परित्राण करो।

यदि नास्मि महापापी, यदि नास्मि भयान्वितः

यदि नेन्द्रिय संसक्तस्तत्कोर्थ शरण मम।८।

अर्थ–यदि मैं महापापी न होता, यदि मैं भयभीत न होता, यदि मैं इन्द्रियों में आसक्त नहीं होता तो आप के शरण की मुझे क्या आवश्यकता होती।

आर्तो मत्सदृशोनान्यस्त्वत्तों नान्यः कृपापरः
तुल्यैवा वयोर्योगः कथं नाथ न पाहिमाम्।९।

अर्थ–मेरे समान कोई आर्त्त नहीं और आपके समान कोई दयालु नहीं, अतः हम दोनों का संयोग मिला है। हे नाथ, आप फिर भी रक्षा क्यों नहीं करते?

द्वेष्योहं सर्वजन्तूनां बन्धूनां च विशेषतः
सुहृदवर्गस्य सर्वस्य किमन्यत्कथयामिते।१०।

अर्थ–सब प्राणियों का, विशेषकर बन्धुओं का तथा समस्त मित्रवर्ग का द्वेषी हूँ, इस के अतिरिक्त मैं आपसे क्या कहूँ (कि सब से अलग पड़ा हूँ।)

माता पितृ विहीनस्य दुःख शोका तुरस्य च
आशा-पाश निबद्धस्य, राग-द्वेषा युतस्य च।११।

अर्थ–माता-पिता से रहित, दुःख तथा शोक से आतुर, आशा-पाश से बंधा, राग-द्वेष से मैं युक्त हूँ, अर्थात् मैं समस्त क्लेशों से ग्रस्त हूँ।

देव देव महादेव शरणागत वत्सल
नान्यस्त्रातास्ति में कश्चित् त्वद्दृते परमेश्वर।१२।

अर्थ–हे देवों के देव महादेव, हे शरणागत वत्सल, हे परमेश्वर, आपको छोड़कर मेरी रक्षा करने वाला कोई और नहीं।

आशिरवान्त निमग्ननोस्मि दुस्तरे भवकर्दमे
प्रसीद कृपया शम्भो पादाग्रेणोद्धरस्वमाम्।१३।

अर्थ–मैं इस संसार रुपी कीच में शिखा तक डूब चुका हूँ। हे शम्भो, आप प्रसन्न हों। कृपा करके अपने चरणाग्र से मेरा उद्धार करें।

श्रुत्वा में भवभीतस्य भगवान करुणागिरः

तथा कुरु यथा भूयो, न बान्धते भवापदः।१४।

अर्थ—हे भगवन्, संसार से डरे हुए मुझ आर्त की करुण वाणी सुनकर आप ऐसा करें कि संसार रुपी आपत्ति फिर मुझे बन्धनयुक्त न कर दे।

आपन्नोऽस्मि शरण्योस्मि सर्वावस्थाऽस्मि सर्वदा

भगवस्त्वां प्रपन्नोऽस्मि, रक्षमां शरणागतम्।१५।

अर्थ—मैं शरणेच्छु (शरण में जाने का इच्छुक) आपके पास आ गया हूँ और सभी अवस्थाओं में एवं सर्वदा आपकी शरण में हूँ, अतः मुझ शरणागत की रक्षा करो।

आर्तनाद

संसार पाश दृढ़ बन्धन पीडितस्य

मोहान्धकार विषयेषु निपातितस्य

कामार्दितस्य भयराग खलीकृतस्य

दीनस्य मे कुरु दया परलोकनाथ ॥१॥

अर्थ—हे परलोक के स्वामी, मुझ भवबन्धन से पीडित, मोहान्धकार द्वारा विषयों में निमग्न, काम द्वारा मर्दित तथा भय एवं राग के द्वारा दुष्ट बनाये दीन पर दया करो।

दीनोऽस्मि मन्द धिषणोऽस्मि निराश्रयोऽस्मि
दासोऽस्मि साधु जनता-परिवर्जितोऽस्मि
दुष्टोऽस्मि दुर्भग रतोस्मि गतत्रयोऽस्मि
धर्मोज्झितोऽस्मि विकलोऽस्मि कलंकितोऽस्मि ।।२।।

अर्थ—मैं दीन हूँ, मंद हूँ, निराश्रय हूँ, दास हूँ, साधुओं के संग से रहित हूँ, दुष्ट हूँ, दुराचारी हूँ, निर्लज्ज हूँ, धर्मभ्रष्ट हूँ, व्याकुल हूँ और कलंकित हूँ।

भीतोऽस्मि भंगुरतोऽस्मि भयानकोऽस्मि
शंकाशतव्यति कराकुल चेतनोऽस्मि
रागादि दोष निचयैर्मुखरी कृतोऽस्मि
सत्यादि शौच नियमैः परिवर्जितोऽस्मि ।।३।।

अर्थ—मैं भयभीत हूँ (क्योंकि) क्षणभंगुर हूँ, भयानक हूँ, सैंकडों शंकाओं की उलझन से मेरी बुद्धि आकुल हो गई है। रागादि दोषों ने मुझे बर्हिमुख्ट बना दिया है यम तथा नियम से मैं रहित हूँ।

जन्माटवी भ्रमण-खेदित मारुतोऽस्मि
नित्यामयोऽस्म्य शरणोऽस्म्य समंजसोऽस्मि
आशा निरंकुश पिशाचिक-पाचितोऽस्मि
दासोऽस्मि हा पशुपते शरणागतोऽस्मि ।।४।।

अर्थ—जन्म-मरण रुपी वायु द्वारा संसार वन में भ्रमण करते करते अति दुखी हो गया हूँ, नित्य रोगग्रस्त रहता हूँ, अशरण हूँ, असमंजस में पड़ा हूँ, बेरोक आशा रुपी पिशाचिनी मुझे पका रही है। हे पशुपति, मैं निस्सहाय आपका दास आपकी शरण आया हूँ।

न सोदरो न जनको जननी न जाया
नैवात्मजो न च कुलं विपुलं बलंवा।
संदृश्यते न किल कोऽपि सहायको में
तस्मात्वमेव शरणं मम देव देव ! ॥५॥

अर्थ—भाई, पिता, माता, स्त्री, पुत्र, कुल एवं विपुल बल—कोई भी मुझे अपना सहायक नही दीखता, अतः हे देवों के देव, आप ही मेरी एकमात्र शरण हैं।

नोपासिता मदमपास्य मया महान्तस्ती-
र्थानि चास्तिकधिया नहि सेवितानि।
देवार्चनं न विधिवन्न कृतं कदापि
तस्मात्त्वमेव शरणं मम शूलपाणे ॥६॥

अर्थ—मैंने न तो अभिमान को छोड़कर महात्माओं की आराधना की, न आस्तिक बुद्धि से तीर्थों का सेवन किया और न कभी विधि पूर्वक देवार्चन ही किया। अतः हे त्रिशूलधारी, आप ही मेरा एक मात्र सहारा हैं।

दुर्वासना मम सदा परिकर्षयन्ति
चित्तं शरीरमपि रोगगणा दहन्ति
सञ्जीवनं च परहस्तगतं सदैव
तस्मात्त्वमेव शरणं मम प्राणनाथ ॥७॥

अर्थ—दुर्वासनाएं सदा मेरे मन को खींचती रहती हैं, अनेकानेक रोग मेरे शरीर को तपाते रहते हैं, और मेरा जीवन तो सदा परवश ही है। अतः हे प्राणनाथ, आप ही मेरे एकमात्र शरण हैं।

पूर्वं कृतानि दुरितानि मयातु यानि
स्मृत्वाखिलानि हृदयं परिकम्पते मे
ख्याताचते पतित पावन तातु यस्मात्
तस्मात्त्वमेव शरणं मम देव देव ॥८॥

अर्थ–पहले मुझ से जो-जो पाप हुए हैं उन सब को याद करके मेरा हृदय काँपता है। किंतु आपकी पतितपावनता तो प्रसिद्ध है, अतः हे देवों के देव, आप ही मेरे एकमात्र शरण हैं।

दुखं जरा जननजं विविधाश्च रोगाः
काकश्चसूकर जनिर्निरये च पातः
ते विस्मृतेः फलमिदं विततंहि लोके
तस्मात्त्वमेव शरणं मम देव देव ॥९॥

अर्थ–हे प्रभो ! आपको भूलने से संसार में जरा-जन्मादि से उत्पन्न दुःख, नाना प्रकार के रोग, कौआ, सुअर, कुत्ता आदि योनियाँ तथा नरकवास-यही फल मिलते है। अतः हे देवादिदेव, आप ही मेरे एक मात्र शरण है।

नीचोऽपि पापवलितोऽपि विनिन्दितोऽपि
ब्रूयात्तवाहमिति यस्तु किलैकबारम्
तं यच्छसीश निजलोकमिति व्रतं ते
तस्मात्त्वमेव शरणं मम देव देव ॥१०॥

अर्थ–नीच, महापापी अथवा निन्दित जो भी हो, एक बार भी यदि यह कह देता है कि "मैं आप का हूँ" उसे आप अपना धाम दे डालते हैं, यह आपका व्रत है, अतः मुझ पापी की आप ही एक गति हैं।

पापः खलोऽहमिति नार्हसि मां विहातुं

किं रक्षया कृतमतेरकुतोभयस्य।

यस्मादसाधुर धमोऽहमपुण्यकर्मा

तस्मात्तवास्मि सुतरामनु कम्पनीयः ॥११॥

अर्थ–हे विभो ! 'मैं रवल औ-पापी हूँ' यह समझकर आप मेरा परित्याग मत कीजिये। क्योंकि सर्वथा निर्भय और पुण्यात्मा को आपकी रक्षा से क्या प्रयोजन है। चूँकि मैं अत्यन्त असाधु, अधम और पापात्मा हूँ, इसी लिए आप परमदयालु का अत्यन्त अनुकम्पनीय हूँ।

स्वैरेव यद्यपि गतोऽहमधः कुकृत्यै–

स्तत्रापिनाथ तव नास्म्यवलेपपात्रम्

दृप्तः पशु पतति यः स्वमन्धकूपे

नोपेक्षते तमपि कारुणिको हि लोकः॥ १२॥

अर्थ–हे नाथ ! यद्यपि मैं अपने ही कुकर्मों से उस अधोगति को प्राप्त हुआ हूँ, तथापि आप के तिरस्कार का पात्र नहीं हूँ। ज़रा सोचिये यदि कोई पशु (अपने तारुण्यमद से गर्वित हो)। किसी अन्धकूप में गिरता है तो उसे भी दयालु लोग उपेक्षित नहीं करते अर्थात् उस कूप से निकाल ही लेते हैं।

अत्यन्नतान्निज पदाच्चपलश्च्युतोऽयं

भूरीन्भ्रमिष्यति जड प्रकृतिः कुमार्गान्

मत्वेति चेत्त्यजसि मामयमीदृगेव

गाङ्गस्त्वया किमिवि मूर्ध्नि धृतः प्रवाहः॥१३॥

अर्थ–हे नाथ ! 'अतीत उन्नत पद से च्युत चपल स्वभाव यह

दुष्टात्मा अनेक कुमार्गों में भटकेगा', ऐसा सोचकर यदि आप मेरा परित्याग कर रहे हैं, तो इन्हीं अवगुणों से भरे इस गङ्गा-प्रवाह को मस्तक पर क्यों धर लिया?

हन्तायमार्तिमपि नारकिणो धृतश्चेत्
मूर्ध्नां किलेति वहसे यदि गाङ्गमोधम्।
एतत्तवोचितमनाथ जनार्ति भङ्ग
हेवाकिनो धनघृणामृत सागरस्य॥१४॥

अर्थ—यदि इस अभिप्राय से कि 'यह पापी लोगों की पीडाओं को दूर कर देगा' आपने इसे मस्तक पर धारण किया तो हे नाथ ! अनाथजनों के दुःख भार को दूर करने में तत्पर आप करुणा सागर का यह कर्त्तव्य उचित ही हैं।

अस्मादृशस्य रसना तु सहस्त्रधेयं
गच्छेदवाप्य तव शीर्षमि तीरयन्ती।
किन्तूद्धरामि भवदग्रपदावमर्श
मात्रादहं त्रिजगतीमिति मे प्रतिज्ञा॥१५॥

अर्थ—ऐसी स्थिति में हम जैसे भक्तजनों की रसना यदि यह कहने की धृष्टता करे कि नाथ ! मैं भी आपके मस्तक पर गङ्ग के समान सुखपूर्वक रहूँगी' तो इसके टुकडे-टुकडे हो जायँ ! किन्तु मेरी तो यही प्रतिज्ञा है कि मैं केवल आपके चरणाग्र के स्पर्श मात्र से क्षणभर में त्रिलोकी का उद्धार करुँगा।

क्षामो निकाम जडिमा कुटिलः कलावान्
दोषाकरोऽयमिति चेत्यजसि प्रभो माम्।
एतादृशैरुपगतोऽपि समस्तदोषैः
कस्मात्वया शिरसि नाथ धृतः शशाङ्कः ॥१६॥

अर्थ–हे प्रभो ! यह प्राणी अत्यन्त कृश, जड कुटिल-अन्तःकरण, कलावांन और दोषाकर है, यह समझकर यदि आप मेरा परित्याग करते हैं, तो फिर आपने ऐसे ही अवगुणों वाले शशाङ्क को मस्तक पर क्यों धारण किया ? यह भी तो अत्यन्त कृश, जडिमा (शीतलता) युक्त, कुटिल, कलावान और दोषाकार है।

पाप ग्रहो धृतिमुपैति विना परेषां
न स्वापहारमय मित्यथ मां जहासि
एवं विधोऽपि तव दक्षिण दृष्टि पात
पात्र त्वमीश्रर कथं रचिमानुपेत ः॥१७॥

अर्थ–हे प्रभो ! यदि आप यह समझकर कि 'यह पापात्मा दूसरों के स्व का अपहरण किये बिना चैन नही पाता,' मेरा परित्याग करते हैं तो (यह बताइये) इस लालची सूर्य को आपने अपने दक्षिण नेत्र में सस्नेह कैसे धारण किया है? क्योंकि यह भी तो पापग्रह है और हर एक के स्वाप का (नीदं को) हरण किये बिना चैन नहीं पाता।

अत्यूष्मलं मलिन मार्गमनेक जिह्वं
स्पर्शेऽप्यनर्हमवधार्य जहासि चेन्माम्
एतादृशोऽपि शुभदृष्टि निवेशनस्य
पात्रीकृतः कथमयं भवताश्रयाशः ॥१८॥

अर्थ–और यदि मुझे अत्यूष्मल, मलिन मार्ग अनेक जिहावों वाला और स्पर्श के भी अयोग्य समझकर मेरा त्याग कर रहे हो तो फिर ठीक ऐसे ही आश्रयाश (अग्नि) को सपक्षपात अपने तृतीय नेत्र में क्यों धारण किया है? यह भी तो अत्यूष्पल (तपानेवाला), मलिनमार्ग, अनेक जिह्व और उष्ण होने के कारण स्प्पर्श के भी अयोग्य है।

निष्कर्ण एष कुसृति व्यसनी द्विजिह्वो
मत्वेति चेत्यजसि निःशरण प्रभो माम्
एतादृशोऽपि पवनाशन एष कस्मात्
श्रीकण्ठ कण्ठ पुलिने भवता गृहीतः ॥१९॥

अर्थ–प्रभो ! यह पुरुष निष्कर्ण (किसी की बात न सुनने वाला) कुसृति-व्यसनी (कुमार्ग गामी) और द्विजिह्व (असत्यवादी) है, ऐसा समझकर आप मेरा परित्याग कर रहे हैं तो फिर श्रीकण्ठ ! इन ही दोषों से भरे वासुकी सर्ष को अपने कण्ठ में क्यों धारण किया है।

जिह्वा सहस्त्र युगलेन पुरा स्तुतस्त्व-
मेतेन तेन यदितिष्ठति कण्ठपीठे
एकैव मे तब नुतौ रसनास्ति तेन
स्थानं महेश भवदङ्घ्रितले ममास्तु॥२०॥

अर्थ–महेश ! इस सर्पराज वासुकि ने पहले अपनी दो हज़ार जिह्वाओं से आप की स्तुति की थी। उससे प्रसन्न हो यदि आप ने इसे अपने गले में स्थान दिया है तो मेरे पास आप की स्तुति करने के लिए एक ही जिह्वा है, अतः इस की बराबरी का स्थान न देकर आपके चरण तल में ही मेरा स्थान हो।

शृङ्गी विवेक रहितः पशुरुन्मदोऽयं
मत्वेति चेत्परिहरस्यतिकातंर माम्।
एवं विधोऽपि वृषभश्चरणार्पणेन
नीतस्त्वया कथमनुग्रहभाजनस्त्वम्॥२१॥

अर्थ–'यह पुरुष शृङ्गी (अहंकारी) विवेक रहित, पशु समान उन्मत्त है' ऐसा समझकर यदि आप मेरा परित्याग कर रहे हो, तो फिर

आप ने फिर मेरे ही जैसे–शृङ्गी, विवेक रहित पशु और उन्मद–नन्दी को भी अपने चरण कमल अर्पित कर अनुग्रह का पात्र कैसे बनाया।

पृष्ठे भवन्तमयमुद्वहते कदाचि-
देतावता यदि तवैति दयास्पदत्वम्।
स्वामिन्नहं तु हृदयेऽन्व हमुद्वहामि
त्वामित्यतः कथमहो न तवानुकम्प्यः।।२२।।

अर्थ–यह बैल आपको कभी कभी अपनी पीठ पर बैठा इधर उधर ले जाता है। यदि इसी कारण यह आपकी दया का पात्र बना है, तो स्वामिन् ! मैं तो आपको प्रतिक्षण अपने हृदय में वहन करता हूँ, तो फिर मैं आप का दया पात्र क्यों नही बन पाता।

भक्तप्रियः स्वयमपि क्षुधयान्वितस्य
पानोत्सवैकरसिकोऽपि पिपासितस्य
तापातुरस्य घनसेवन सादरोऽपि
जानासि नाथ न कथं सहसा ममार्तिम्।।२३।।

अर्थ–नाथ–[साधारण पुरुष भी क्षुधा-पिपासा कुल प्राणी के दुःखों पर विचार करता है] आपतो स्वयं भक्त प्रिय होकर भी क्षुधापीडित की पीडा को तत्काल क्यों नहीं जान लेते ? पानोत्सव (त्रैलोग्य संरक्षण) के एक मात्र रंसिक होकर भी मुझ पिपासाकुल के दुःख पर क्यों नहीं पसीजते और धन सेवन के प्रेमी होकर भी मुझ तापत्रय पीडित की व्यथा को शीघ्र क्यों नहीं जानते?

एकस्त्वमेव भविनामनिमित्तबन्धु-
नैंसर्गिकी तव कृपा सवितुः प्रभेव।
वामः पुनर्मम विधिः परिदेवितानि
जातान्यरण्यरुदितेन समानि यस्य।।२४।।

अर्थ–हे नाथ ! संसारी जीवों के अकारण बन्धु एक मात्र आप ही हैं। सूर्य को प्रभा के समान स्वाभाविकी करुणा केवल आपकी ही है। परन्तु मेरा भाग्य खोटा है। जो मेरे करुणालाप अरण्यरोदन से विफल हो गये हैं।

नमन

अग्निषोमरविब्रह्म विष्णु स्थावर जंगम
स्वरुप बहुरुपाय नमः संविन्मयायते।१।

अर्थ–अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, ब्रह्म, विष्णु, चर और अचर स्वरुपों को धारण करने वाले संविद्रूप आपको नमस्कार है।

महादेवाय रुद्राय शंकराय शिवाय च
महेश्वरायापि नमः कस्मैश्चिन्मंत्रमूर्तये।२।

अर्थ–हे प्रभु ! परमदेवता, रुद्र, शंकर, शिव (सुख स्वरुप), ईश्वरों के भी ईश्वर, आपको नमस्कार है।

वेदागम विरुद्धाय वेदागम विधायिने
वेदागम सतत्त्वाय गुह्याय स्वामिने नमः।३।

अर्थ–वेद आदि शास्त्रों के विरोधी, वेदादि शास्त्रों का विधान करने वाले, वेदादि शास्त्रों के सार रुप और सर्वथा अगोचर, आप स्वामी को नमस्कार है।

संसारैक निमित्ताय संसारैक विरोधिने
नमः संसार रुपाय निःसंसाराय शम्भवे।४।

अर्थ–संसार निर्माण के एक ही कारण, संसार के एक ही संहारक,

संसार स्वरुप, संसार के अछूते रुप वाले आप कल्याणकारी शिव को नमस्कार है।

नमः सुकृतसंभार विपाकः सकृदप्यसौ

यस्य नाम ग्रहः तस्मै दुर्लभाय शिवाय ते!५।

अर्थ—जिसका एक बार भी किया गया नाम-स्मरण पुण्यकर्मों की राशिफल है उस अति दुष्प्राप्य आप महादेव को नमस्कार है।

नमः चरश्चराकार परेत निचयैः सदा

क्रीडते तुभ्यमेकस्मै चिन्मयाय कपालिने।६।

अर्थ—हे स्वामी ! चराचर शरीरों वाले प्रेतों के साथ सदैव खेलने वाले, खप्परधारी, अद्विितीय और चिदानन्दस्वरुप आप को नमस्कार है।

मायाविने विशुद्धाय गुह्याय प्रकटात्मने

सूक्ष्माय विश्वरुपाय नमश्चित्राय शम्भवे।७।

अर्थ—मायावी होते हुए भी विशुद्ध स्वरुप वाले, गुप्त रुप होते हुए भी प्रकट स्वरूप वाले, सूक्ष्मरूप वाले होते हुए भी। विश्वस्वरुप आश्चर्य रुप वाले शिव जी को नमस्कार है।

मंगलाय पवित्राय निधये भूषणात्मने

प्रियाय परमार्थाय सर्वोत्कृष्टाय ते नमः।८।

अर्थ—हे परमात्मा ! कल्याण स्वरुप, पवित्रतमकोष स्वरुप, भूषणों के भी भूषण, प्रिय स्वरुप सत्य स्वरुप और सर्वश्रेष्ठ आपको नमस्कार है।

उपहासैकसारेस्मिन् एतावति जगत्त्रये

तुम्भमेवाद्वितीयाय नमो नित्य सुखासिने।९।

अर्थ—हे ईश्वर, परिहास ही सार है जिस का, ऐसी इस त्रिलोकी

में, जो इतनी विस्तृत है सदैव आनन्दमग्न तथा असाधारण स्वरुप वाले आपको नमस्कार है।

मुमुक्षजन सेव्याय सर्वसन्ताप हारिणे
नमो विततलावण्य वराय वर दायते।१०।

अर्थ—हे प्रभो, मोक्ष चाहने वालों से सदा सेवा किये जाने योग्य, समस्त दु:खों का नाश करने वाले, अनन्त सौन्दर्य से युक्त और अभीष्ट वर देने वाले आपको नमस्कार है।

मुनीनामप्यविज्ञेयं भक्ति सम्बन्ध चेष्टिता
आलिङ्गन्त्यपि यं तस्मै कस्मैचिद्भवते नमः।११।

अर्थ—मुनियों से भी न जाने जा सकने वाले, किन्तु भक्ति से सम्बद्ध भक्तजन जिस प्रभु का आलिङ्गन भी करते हैं उसी अलौकिस्व रुप वाले आप को नमस्कार है।

परमामृत कोषाय परमामृत राशये
सर्व पारम्य पारम्य प्राप्यय भवते नमः।१२।

अर्थ—जो परमानन्द रुपी अमृत का भण्डार है, जो मोक्ष रुपी आनन्द की राशि है और जो समस्त (तत्त्व वर्ग) की उच्च काष्टा की भी चरम सीमा पर प्राप्त होने से सुलभ है उसी ईश्वर को प्रणाम है।

भवत्पादाम्बुज रजो राज रञ्जित मूर्धजः
अपार रभसारब्ध नर्तनः स्यामहं कदा।१३।

अर्थ—हे प्रभु ! मैं आपके चरण कमलों की धूलि पुञ्ज से रंगे हुए केशों वाला (और उसके फलस्वरुप) असीम हर्ष से आरम्भ किए हुए नृत्यवाला भला कब बनूँ।

समुल्लसन्तु भगवन भवद्भानु मरीचयः
विकसत्वेष यावन्मे हृत्पदमः पूजनायते।१४।

अर्थ–हे प्रभु ! मैं उस स्थान को प्राप्त करुँ जहाँ हँसा जाता है, नाचा जाता है, राग–द्वेष भोगे जाते हैं और भक्ति रुपी अमृत रस पिया जाता है।

क्षणमात्रमपीशान वियुक्तस्य त्वया मम
निबिडं तप्यमानस्य सदा भूयाद् दृष्यः पदम्।१५।

अर्थ–हे प्रभु ! क्षणमात्र के लिए भी आप से अलग होने पर मैं अत्यन्त सन्तप्त होता हूँ (अतः) आप मेरी नज़रों के सामने सदा रहें।

कां भूमिकां नाधिशेषे किम् तत् स्याद् यन्नतेवपुः
श्रान्तस्तेना प्रयासेन सर्वतस्त्वाम् वाप्नुयाम।१६।

अर्थ–हे प्रभु ! आप किस व्यवस्था में नही रहते हैं और वह कौन सी वस्तु है जो आपका स्वरुप नहीं हो सकती। अतः दुखी बना हुआ मैं आप को बिना प्रयास के ही प्रत्येक स्थान पर प्राप्त करुँ।

प्रकटीभव नान्याभिः प्रार्थनाभिः कदर्थना
कुमस्ते नाथ ताम्यन्तस्त्वामेव मृगयामहे।१७।

अर्थ–हे स्वामी ! आप प्रकट हो जाइये। अन्य प्रार्थनाओं से हम आपको कष्ट नहीं देते हैं (आपके वियोग से) दुःखी होकर हम आप की ही टोह करते हैं (प्राप्त करना चाहते हैं)।

किमपि नाथ कदाचन चेतसि
स्फुरति त्वद् भवदंघ्रितलस्पृशाम्।
गलति यत्र समस्तम् इदम् सुधा
सरसि विश्वम् इदं दिश मे सदा।।१८।।

अर्थ–आपके चरणतलों के स्पर्श से युक्त भक्तों के मन में कभी वह अलौकिक अवस्था प्रकट होती है जिस में यह सारा संसार अमृत के सरोवर में लय हो जाता है, वही अवस्था, हे प्रभो ! सदैव मुझे प्रदान कीजिए।

यः प्रसादलव ईश्वरस्थितो

या च भक्तिरिव मामुपेयुषी।

तौ परस्पर समन्वितौ कदा

तादृशे वपुषि रूढ़िमेष्यतः ॥१९॥

अर्थ—आप ईश्वर के पास ठहरा हुआ जो थोडा सा अनुग्रह है और जो थोडी सी भक्ति मेरे पास आई है वे दोनों एक दूसरे के साथ मिलकर वैसे सच्चिदानन्द स्वरुप में कब विकास को प्राप्त होंगे।

निज निजेषु पदेषु पतन्त्विमाः

करण वृत्तय उल्लसिता मम।

क्षणमपीश मनागपि मैवभूत

त्वदवि भेद रस क्षति साहसम् ॥२०॥

अर्थ—हे प्रभु ! मेरी आनन्द से भरी हुई इन्द्रियों की वृत्तियाँ अपने-अपने विषयों में लगी रहें किन्तु मुझे आपके अद्वयानन्द रस वञ्चित होने का साहस क्षण भर के लिए भी और जरा सा भी न हो।

विषमरोषमरोः पथि पातयन्

मतिमनीति मनीक्षित सत्पथाम्।

भृशमयं शमयन् नियमं कथम्

तव पुरो व पुरोषति मे मदः ॥२१॥

अर्थ—हे नाथ ! सन्मार्ग से विमुख और नीति से रहित अति विषम क्रोध रुपी मरुस्थल के मार्ग में गिराता हुआ तथा यम नियम को समूल नष्ट करता हुआ यह दुष्ट अहंकार आप प्रभु के सामने मुझ आप के दास के शरीर को कैसे जला सकता है।

न हरिणा हरिणाङ्क शिखामणे

न विधिना विधिनाऽपि सपर्यता।

तव पुरा वपुराम मृशे वयं

क्व नु भवानुभवा वृत चेतसः ॥२२॥

अर्थ—हे चन्द्रशेखर ! भगवान विष्णु ने भी आपके शरीर का अन्त नहीं पाया और विधिपूर्वक आपकी सेवा में लगे हुए ब्रह्मा जी ने भी आप का पार नहीं पाया। तब फिर माया के आवरण में पड़े हम लोग आपकी स्तुति के लिए कैसे साहस कर सकते हैं।

भृशमनीशमनीति पथस्थितं

मदवशादवशाक्षमुपप्लुतम्।

अहरहर्हर हर्षयते न किम्

हितवती तव तीव्र शुचं रुचिः ॥२३॥

अर्थ—हे हर ! अत्यन्त अनाथ, कुमार्ग पर चलने वाले, अहंकार के कारण अजितेन्द्रिय काम-क्रोधादि वैरियों से घिरे हुए मुझ अत्यन्त शोकाकुल को आपकी हितवती रुचि रात दिन क्यों नहीं हर्षित करती है।

कुशलपेशल पेलव दृग्वमन्

रसनया सनयार्त्तिहृतामृतम्।

मदनसादन सान्त्वय संपदाम्

अपदमापदमाश्रित मे हिमाम् ॥२८॥

अर्थ—हे मदन के मान का मर्दन करने वाले सदाशिव ! मंगल से मधुर और अतीव सौम्यवती दृष्टि को धारण करते हुए सदा नीति पर

चलने वाले लोगों की पीड़ा को दूर करने वाली रसना से अमृतवर्षा करते हुए, मोक्ष सम्पत्ति से रहित और आपद्ग्रस्त मुझ दीन को आश्वासन दीजिये।

कथम नाथमनाग समन्तिके

मदन मर्दन मर्षयसे नमाम्।

भुवन भावन भाति बिना त्वया

जगति कोऽगति कोद्धरण क्षमः ॥२५॥

अर्थ–हे काम विजीयन ! आप मुझ निरपराध अनाथ को सामने क्यों नहीं रख लेते। हे समस्त भुवनों के निर्माता ! आपके बिना अगतिको का उद्धार करने वाला जगत में दूसरा कौन है?

यदि कृपापर पापरतस्य मे

न कुरुषे परुषे पदमाशये।

हिततमा कतमा कलुषात्मनो

मम हराऽमहरा घटते गतिः ॥२६॥

अर्थ–हे दयापरायण ! यदि आप मुझ पापात्मा के अतिशय कठोर हृदय में अपना स्थान नहीं बनायेंगे, तो फिर हे नाथ ! मुझ मलिन अन्तः करण का उद्धार करने वाली दूसरी गति और कौन होगी?

स्थिरविभा रविभाति रिवोन्मदं

मदमयं दमयन्त्यसमन्तमः।

तव दया वदयात्युदयं न चेद्

भव तमी बत मीलति मे कथम् ॥२७॥

अर्थ–हे प्रभो ! जैसे सूर्य की स्थिरदीप्ति गाढ़ अन्धकार को दूर करती हुई उदय होती है वैसे ही आपकी प्रभावशालिनी कृपा यदि मेरे

इस अहंकारमय गाढ़ अन्धकार को दूर करती हुई नहीं उदय होगी, तो हे नाथ ! फिर आप ही बतलाइये कि मेरी यह संसार रुपी रजनी कैसे दूर होगी ?

निधन साधन सान्द्रसलद्विषा
नल कराल करात्तम होरग :।
नियमनाय मनाङ्मम सस्पृहे
भवति धावति धाम यमः कथम्।।२८।।

अर्थ–हे प्रभु ! आपकी दयादृष्टि हो जाने पर प्राणियों का संहार हो जाने पर प्राणियों का संहार कर देने वाले महाभयंकर विषानल से विकराल नागपाश को हाथ में धारण किया हुआ यमराज मुझे ज़रा भी भय देने को मेरे पास कैसे आ सकता है।

मम निकाम निकार कृतो वृथा
वपुरवा पुरवार्यरुषोऽरयः।
न हि तदाहि तदा हम दन्त्यमी
तव हिता वहिता हि नतेषु धीः ।।२९।।

अर्थ–हे नाथ ! अत्यन्त तिरस्कार करने वाले और महान कोप से भरे हुए ये कामक्रोधादि शत्रु मुझ आपके सेवक के शरीर में वृथा ही आ गये, क्योंकि ये मेरे शरीर में अपना अधिकार नहीं कर सकते, कारण यह है कि आपकी दया भक्तजनों की रक्षा करने में हर समय बड़ी सावधान रहती है।

यदि विभा दिवि भाति न तावकी
यदि न मे दिनमेति भवन्मयम्।
वद महादमहारि तमः कथम्
विषम दोषमदो विनिवर्तते ।।३०।।

अर्थ–हे सदाशिव ! यदि आपकी परम् प्रकाश हमारे हृदयाकाश में उदय न होगा और यदि मेरा दिन निरन्तर आपके ही स्मरण में व्यतीत न होगा, तो फिर हे नाथ! आप ही कहिए कि महाशान्ति को हरने वाला तथा मायावरण से उत्पन्न अन्धकार आदि विषम दोषों से भरा हुआ यह मेरा अज्ञान रुपी अन्धकार कैसे हटेगा?

कमलिनी मलिनी क्रियते यया
विहतसन्तत सन्तम सापि या
स्मरचिता रचितापि च यत्र तां
वितर कातर कामदुधां दृशम् ॥३१॥

अर्थ–हे प्रभु ! आपके वामभाग में स्थित जो आपकी चन्द्ररुपी दृष्टि कमलिनी को मलिन करती है और दक्षिण भाग में स्थित जो सूर्यरुपी दृष्टि सदैव गाढ़ अन्धकार को दूर करती है, एवं ललाट में स्थित जो अग्निरुपी दृष्टि कामदेव को भस्म करने के लिए चिता बनी थी, उन शरणागतों की अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली–चन्द्र, सूर्य, अग्निरुप, तीनों तेजोमय पिण्डों को धारण करने वाली मनोहर दृष्टियों को मुझ पर समपर्ण कीजिए !

शिव अपराधक्षमापन स्तोत्रम्

आदौ कर्म प्रसंगात् कलयति कलुष मातृकुक्षौ
स्थितं मां, विण्मूत्रा मेध्य मध्ये कथयति नितरां
जाठरो जात वेदाः। यद् यद्वै तत्र दुःखं
व्यथयति नितरां शक्यते केन वक्तुम्,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भो
श्री महादेव शम्भो॥१॥

अर्थ—पहले कर्मसङ्ग से किया हुआ पाप मुझे माता की कुक्षी में ला खड़ा करता है फिर मलमूत्र के बीच जठराग्नि खूब संतप्त करता है, वहाँ जो जो दुःख निरन्तर व्यथित करते रहते हैं उन्हें कौन कह सकता है? हे शिव ! हे शिवशंकर ! हे महादेव ! हे शम्भो ! अब मेरा अपराध क्षमा करो।

बाल्ये दुःखातिरेको मल लुलित वपुः स्तन्यपाने
पिपासा नो शक्तश्चेन्द्रियोम्यो भव गुण जनिता
जन्तवों मां तुदन्ति। नाना रोगादि दुःखाद्
रुदनपरवशः शंकरं न स्मरामि। क्षन्तव्यो''' ॥२॥

अर्थ—बाल्यावस्था में दुःख की अधिकता रहती थी, शरीर मल-मूत्र से लिथड़ा रहता था और निरन्तर स्तनपान की पिपासा रहती थी, इन्द्रियों में कोई कार्य करने की सामर्थ्य न थी, आपकी माया से उत्पन्न नाना जन्तु मुझे काटते थे, नाना रोगादि दुःखों के कारण मैं रोता ही रहता था, तब भी मुझ से शंकर का स्मरण नहीं बना, इसलिए हे शिव ! हे शिव ! हे शंकर......।

प्रौढोऽहम् यौवनस्थो विषय विषधरे पञ्च
भिमर्म सन्धौ दष्टो नष्टो विवेकः सुतधन
युवतिस्वाद सौख्ये निषण्णः। शैवी चिन्ता
विहीनं मम हृदय महो मानगर्वाधिरूढं
क्षन्तव्योमेऽपराधः.........।।३।।

अर्थ–जब मैं युवावस्था में जाकर प्रौढ़ हुआ तो पाँच विषय रुपी सर्पों ने मुजे डंसा जिस से मेरा विवेक नष्ट हो गया और धन, स्त्री तथा सन्तान के सुख भोगने में लग गया। उस समय भी आपके चिन्तन को भूलकर मेरा हृदय बड़े घमण्ड़ और अभिमान से भर गया। अतः हे शिव ! हे शंकर........।

वार्द्धकये चेन्द्रियाणां विगतमति मतिश्चाधि
देवादि तापैः पापैः रोगैर्वियोगैस्त्वनवस्तिवपुः
प्रोढि हीनं च दीनम्। मिथ्या मोहाभिलाषै भ्रर्मति
मम मनो धूर्जटेर्ध्यानं शून्यम्। क्षन्तव्योमे...।।४।।

अर्थ–वृद्धावस्था में भी जब इन्द्रियों की गति शिथिल हो गई है, बुद्धि मन्द पड गई है और आधिदैविक आदि तापों, पापों, रोगों तथा वियोगों से शरीर जर्जरित हो गया है, मेरा मन मिथ्या, मोह और अभिलाषाओं से दुर्बल और दीन होकर श्री शंकर के चिन्तन से शून्य ही भ्रम रहा है। अतः हे शिव !........।

नो शक्यं स्मार्त कर्म प्रति पद गहन प्रत्यवाया-
कुलाख्यं श्रौते वार्ता कथं में द्विज कुल विहिते
ब्रह्ममार्गे सुरारे नास्था धर्मे विचारः श्रवण
मननयोः किंनिदिध्यासि तव्यम्। क्षन्तव्यो.........।।५।।

अर्थ—पद-पद पर अति गहन प्रायश्चित्तों से व्याप्त होने के कारण मुझ से स्मार्त कर्म भी नहीं हो सकते। फिर जो द्विजकुल के लिए विहित है उन ब्रह्मप्राप्ति के मार्गस्वरुप श्रौत कर्मों की तो बात ही क्या है? धर्म में आस्था नहीं है और श्रवण मनन के विषय में विचार ही नहीं होता, ध्यान भी कैसे किया जाय। अतः हे शिव.........।

स्नात्वा प्रत्यूषकाले स्नपन विधिविधौ
नादृतं गाङ्गतोयं पूजार्थं वा कदाचिद्
बहुतरगहनात्खण्ड बिल्वी दलानि। नानीता
पद्ममाला सरसि विकसिता गन्धपुष्पे
त्वदर्थम्। क्षन्तव्यो..........॥६॥

अर्थ—प्रातःकाल स्नान करके आपका अभिषेक करने के लिए मैं गङ्गाजल लेकर प्रस्तुत नहीं हुआ, न कभी आपकी पूजा के लिए वन से बिल्व पत्र ही लाया और न आपके लिए तालाब में खिले हुए कमलों की माला तथा गन्धुपुष्प ही लाकर अर्पण किए। अतः हे शिव.........।

दुग्धैमध्वाज्य युक्तैर्दधिसित सहितैः स्नापितं
नैव लिङ्गं नो लिप्तं चन्दनाद्यैः कनक विरचितैः
पूजितं न प्रसूनैः। धूपैः कर्पूर दीपै र्विविध
रसयुतैर्नैव भक्ष्योपहारैः क्षन्तव्यो..........॥७॥

अर्थ—पञ्चामृत से मैंने आपके लिंग को स्नान नहीं कराया, चन्दन आदि से अनुलेप नहीं किया, धतूरे के फूल, धूप, दीप, कपूर तथा नाना रसों से युक्त नैवेधों द्वारा पूजन भी नहीं किया। अतः हे शिव.........।

ध्यात्वाचित्ते शिवाख्यं प्रचुरतरधनं नैव
दत्तं द्विजेभ्यो, हव्यं ते लक्षसंख्यैर्हुत वह

वदने नार्पित बीजमन्त्रैः। नो तप्तं गङ्गा तीरे
व्रतजपनियमै रुद्र जात्यैर्न वेदैः। क्षन्तव्यो...... ।८।

अर्थ–मैंने चित्त में शिव नामक आपका स्मरण करके ब्राह्मणों को प्रचरधन नही दिया, न आपके एक लक्ष बीजमन्त्रों द्वारा अग्नि में आहुतियाँ दीं और न व्रत एवं जप के नियम से तथा रुद्रजाप और वेदविधि से गङ्गातट पर कोई साधना ही की। अतः हे शिव !.........।

स्थित्वा स्थाने सरोजे प्रणवमयमरुत्कुण्डले
सूक्ष्म मार्गे, शान्ते स्वान्ते प्रलीने प्रकटितविभ
वे ज्योतिरुपे पराख्ये लिङ्गाग्रे ब्रह्म वाक्ये
सकल तनुगतं शंकरं न स्मरामि। क्षन्तव्यो...... ।९।

अर्थ–जिस सूक्ष्म मार्ग प्राव्य सहस्त्रदलकमल में पहुँचकर प्राणसमूह प्रणवनाद में लीन हो जाते हैं और जहाँ जाकर वेद के वाक्यार्थ तथा तात्पर्यभूत पूर्णतया आविभूर्त ज्योतिरुप शान्त परम तत्त्व में लीन हो जाता है उस कमल में स्थित होकर मैं सर्वान्तर्यामी कल्याणकारी आपका स्मरण नही करता हूँ। अतः हे शिव.........।

नग्नो निःसंङ्गशुद्धस्त्रिगुण विरहितो ध्वस्त
मोहान्धकारो, नासाग्रे न्यस्त दृष्टिर्विदित
भवगुणो नैव दृष्टः कदाचित् उन्मन्यावस्थाया
त्वां विगत कलिमलं शंकरं न स्मरामि,
क्षन्तव्यो......... ।१०।

अर्थ–नग्न, निःसंग, शुद्ध, त्रिगुणातीत होकर मोहान्धकार का ध्वंस कर तथा नासाग्रि में दृष्टि स्थिर कर मैंने आपके गुणों को जानकर कमी आपका दर्शन नहीं किया और न उन्मनी अवस्था से कलिमल रहित आप कल्याण स्वरुप का स्मरण कर सकता हूँ। अतः हे शिव !.........।

चन्द्रोद्भासित शेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शंकरे
सर्पैर्भूषित कण्ठ कर्ण विवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे।
दन्तित्वकृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमखि लामन्यैस्तु किंकमर्मिः।११।

अर्थ–चन्द्रकला से जिन का ललाट भासित हो रहा है, कन्दर्व दर्प हारी हैं, गङ्गाधर हैं, कल्याणस्वरुप है, सर्पों से जिन के कण्ठ और कर्ण भूषित हैं, नेत्रों से अग्नि प्रकट हो रही है, हस्ति चर्म की जिन की कन्था है तथा जो त्रिलोकी के सार हैं, उन शिव में मोक्ष के लिए अपनी सम्पूर्ण चित्रवृत्तियों को लगा दे, और कर्मों से क्या प्रयोजन है।

किं यानेन धनेन वाजिकरिमि प्राप्तेने राज्येन
किम्, किं वा पुत्रकलत्र मित्र पशुमिर्दे हेन
गेहेन् किम्। ज्ञात्वैतत्क्षण भङ्गुर सपदि
रे त्याज्यं मनो दूरतः स्वात्मार्थ गुरुवाक्य तो
भज-भज श्री पार्वती वल्लभम्।१२।

अर्थ–इस धन, घोड़े, हाथी और राज्यादि की प्राप्ति से क्या? पुत्र, स्त्री, मित्र, देह और घर से क्या? इनको क्षणभंगुर जानकर रे मन! दूर ही से त्याग दे और आत्मानुभव के लिए गुरु वचनानुसार पार्वती वल्लभ श्री शंकर का भजन कर।

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं
यौवनं, प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः
कालो जगत् भक्षकः। लक्ष्मीस्तोय तरङ्ग भङ्ग
चपला विद्युच्चलं जीवितं, तस्मान्मां शरणागत
शरणदत्वम् रक्ष रक्षाधुना।१३।

अर्थ–देखते देखते आयु नित्य नष्ट हो रही है, यौवन प्रतिदिन क्षीण हो रहा है, बीते हुए दिन फिर लौटकर नही आते, काल सम्पूर्ण जगत को खा रहा है, लक्ष्मी जल की तरङ्गमाला के समान चपल है, जीवन बिजली के समान चञ्चल है, अतः मुझ शरणागत की हे शरणागत् वत्सल शंकर ! अब रक्षा करो, रक्षा करो !

कर चरण कृतं वाक्कायजं कर्मजम् वा
श्रवण नयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितमवहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व, जय
जय करुणाब्धे श्री महादेव शम्भो।१४।

अर्थ–हाथ से, पैरों से, वाणी से, शरीर से, कर्म से, कर्ण से, नेत्रों से अथा मन से भी जो अपराध किये हों, वे विहित हों या अविहित–उन सब को हे करुणासागर शम्भो ! क्षमा कीजिए ! आपकी जय हो।

पञ्चाक्षरस्तोत्रम

नाग्रेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय निरञ्जनाय
तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय ॥1॥

अर्थ–जिनके कण्ठ में सर्पों का हार है, जिनके तीन नेत्र हैं, भस्म ही जिनका अङ्गराग है, जो नित्य हैं, शुद्ध हैं, निरंजन हैं उन अविनाशी महेश्वर 'न' कार स्वरुप शिव को नमस्काहर है।

मन्दाकिनी सलिल चन्दन चर्चिताय
नन्दीश्वर प्रमथनाथ महेश्वराय
मन्दारपुष्प बहुपुष्प सुपूजिताय
तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय ॥२॥

अर्थ–गङ्गाजल और चन्दन से जिनकी अर्चा हुई है, मन्दारपुष्प तथा अन्यान्य कुसुमों से जिनकी सुन्दर पूजा हुई है, उन नन्दी के अधिपति प्रमथगणों के स्वामी महेश्वर 'म' कार स्वरुप को नमस्कार है।

शिवाय गौरीवदनाब्यजनन्द-
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय
श्री नीलकंठाय वृषध्वजाय
तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय ॥३॥

अर्थ–जो कल्याणस्वरुप हैं, जो दक्ष के यज्ञ का नाश करने वाले हैं, जिनकी ध्वजा में बैल का चिह्न है, उन शोभावाले नीलकण्ठ 'शि' कार स्वरुप शिव को नमस्कार है।

वसिष्ठ कुम्भोद्भव गौतमाय
मुनीन्द्र देवार्चित शेखराय।
चन्द्रार्क वैश्वानरलोचनाय
तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय ॥४॥

अर्थ–वसिष्ठ अगस्त्य और गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियों ने तथा इन्द्रादि देवताओं ने जिनके मस्तक की पूजा की है, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं उन 'व' कार स्वरुप शिव को नमस्कार है।

यक्षस्वरुपाय जटाधराय

पिनाकहस्ताय सनातनाय।

दिव्याय देवाय दिगम्बराय

तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय ।।५।।

अर्थ–जिन्होंने यक्षरूप धारण किया है, जो जटाधारी हैं, जिनके हाथ में पिनाक है, जो दिव्य सनातन पुरुष है, उन दिगम्बर देव 'य' कार स्वरुप शिव को नमस्कार है।

लिङ्गाष्टकम्

ब्रह्म मुरारि सुरार्चित लिङ्गं

निर्मल भासित शोभित लिङ्गम्।

जन्म दुःख विनाशन लिङ्गम्

तत्प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ।।१।।

अर्थ–ब्रह्म, विष्णु तथा देवताओं द्वारा पूजित निर्मल, दिव्य, शोभा से युक्त, जन्म रुपी दुःख के विनाशक उस सदाशिव लिङ्ग को मैं प्रणाम करता हूँ।

देव मुनि प्रवराचित लिङ्गं कामदाहं करुणा

करलिङ्गम्। रावण दर्प विनाशनं लिङ्गम्।

तत्प्रणमामि········ ।।२।।

अर्थ–देवों और मुनियों द्वारा अर्चित काम को भस्म करने वाले रावण के अहंकार को चूर करने वाले उस लिङ्ग को मैं प्रणाम करता हूँ।

सर्व सुगन्धि सुलेपित लिङ्गम्,
बुद्धि विवर्द्धन कारण लिङ्गम्,
सिद्ध सुरासुर वन्दित लिंगम्।
तत्प्रणमामि.........।।३।

अर्थ—समस्त सुगन्धियों से लेप लगाये हुए बुद्धि को बहाने के मूलकारण, सिद्धों, सुरों एवं दैत्यों द्वारा वन्दित उस सदाशिव लिंग को मैं प्रणाम करता हूँ।

कुंकुम् चंदन लेपित लिङ्गम्
पंकज हार सुशोभित लिंगम्
सच्चित् पाप विनाशन लिङ्गम्।
तत्प्रणमामि.........।।४।।

अर्थ—कुम कुम तथा चन्दन का लेप लगाए हुए कमल माला से सुशोभित सत्‌चित् स्वरुप, पाप विनाशक उस सदाशिव लिङ्ग को मैं प्रणाम करता हूँ।

देवगणार्चित सेवितलिङ्गम
भावैर्भक्ति भिरेव च लिङ्गम्
दिनकर कोटि प्रभाकर लिङ्गम्,
तत्प्रणमामि.........।।५।।

अर्थ—भक्ति, सद्भाव से देवगणों द्वारा अन्वित, करोडों सूर्य के प्रकाश से भी बढ़कर द्योतनशील उस सदाशिव लिङ्ग को मैं प्रणाम करता हूँ।

अष्ट दलो परिवेष्टित लिङ्गम्
सर्व समुद्भव कारण लिङ्गम्
अष्ट दरिद्र विनाशन लिङ्गम्
तत्प्रणमामि.........।।६।।

अर्थ—अष्टदल में लिपटे हुए, समस्त दृष्यवर्ग के मूल कारण, अष्ट दरिद्र को नाश करने वाले उस सदाशिव को मैं प्रणाम करता हूँ।

सुरगुरु, सुरवर पूजित लिङ्गम्
सुरवन पुष्प सुदार्चित लिङ्गम्
परात्परं परमात्मक लिङ्गम्
तत्प्रणमामि…… ।।७।।

अर्थ—देवताओं में श्रेष्ठ ब्रहस्पति द्वारा पूजित, देवों के उपवन से लाये गये फूलों से अर्चित, पर से भी परे अर्थात्, सर्वोच्च, परमात्मक स्वरुप लिङ्ग को मैं प्रणाम करता हूँ।

कनक महामणि भूषित लिङ्गम्
फणिपति वेष्ठित शोभित लिङ्गम्
दक्ष सुयज्ञ विनाशन लिङ्गम्
तत्प्रणमामि……… ।।८।।

अर्थ—कनक महामणि द्वारा भूषित फणिदति नागराज द्वारा सुशोभित, दक्ष प्रजापति के यज्ञ के विद्वंस करने वाले शिव लिङ्ग को मैं प्रणाम करता हूँ।

गौरीशाष्टकम्

भज गौरीशं भज गौरीशं गौरीशं भज मूढ़मते।

अर्थ—हे मन्द बुद्धि वाले मनुष्य। तू सदा शंकर भगवान का भजन कर।

जलभव दुस्तर जलधि सुतरणं
ध्येयं चित्ते शिव हर चरणम्।

अन्योपायं नहि नहि सत्यम्
ज्ञेयं शंकर शंकर नित्यम्।।
भज............।१।

अर्थ–इस छली संसार रूप दुस्तर सागर से पार लगाने वाले भगवान शिव के ही चरण का ध्यान कर। संसार से उद्धार पाने का दूसरा कोई उपाय नहीं है, यह सत्य जान कर सदा शंकर के नाम का ही गान कर।

दारा पत्यम् क्षेत्रं वित्तं
देहं गेहं सर्वमनित्यम्।
इति परिभावय सर्वमसारम्
गर्भ विकृत्या स्वप्न वित्तारम्।।२।।
भज............।

अर्थ–स्त्री, सन्तान, क्षेत्र, धन, शरीर और गृह–ये सब अनित्य हैं। गर्भ विकार के परिणाम भूत संसार को निःसार तथा स्वप्नवत् असत्य समझकर केवल शिवचरणों को भज।

मल वैचित्ये पुनरावृत्तिः
पुनरपि जननी जठरोत्पत्ति।
पुनरप्याशा कुलितं जठरम्
किं नहि मुञ्चसि कथयेश्चितम्।।३।।
भज............।

अर्थ–मलभूत संसार के रुप पर मोहित होने से पुनः संसार में लौटना पड़ता है, फिर माता के गर्भ में उत्पत्ति होती है। अतः पुनः आशा से व्याकुल हुए अपने चित्त से तू कह दे कि हे चित्त! क्यों नहीं इस पेट की चिन्ता को तू छोड़ता है। हे मूढ़मति ! तू भगवान शिव को भज।

माया कल्पितमैन्द्र जालं

न हि तत्सत्यम् दृष्टि विकारम्

ज्ञाते तत्त्वे सर्वमसारम्

मा कुरु ! मा कुरु ! विषय विचारम्।।५।।

भज…………।

अर्थ–अरे यह सारा प्रपञ्च माया से कल्पित इन्द्रजाल है, इसका विकार प्रत्यक्ष देखा गया है, इसे कभी भी सत्य न जान तत्त्व ज्ञान हो जाने पर सब कुछ असार ही ठहरता है, इसलिए विषययोग का कभी विचार मत कर ! हे मूढ़मते, तू गौरीपति का भजन कर।

रज्जौ सर्पभ्रमणारोपस्

तद् वद् ब्रह्मणि जगदारोपः

मिथ्या माया मोहविकारं

मनसि विचारय बारम्बारम्।६।।

भज…………।

अर्थ–जैसे रज्जु में भ्रम से सर्प का आरोप होता है, ठीक वैसे ही शुद्ध ब्रह्म में जगत का आरोप मात्र है, यह माया मोह का विकार असत्य है, इस बात को तू बार-बार मन में विचार। हे मूढमते………।

अध्वर कोटि गङ्गा गमनं

कुरुते योगं चेन्द्रियदमनं।

ज्ञान विहीनः सर्वमतेन

न भवति मुक्तो जन्मशतेन।।७।।

भज…………।

अर्थ–लोग करोड़ों यज्ञ करते हैं, स्नान के लिए गङ्गा जी जाते हैं, इन्द्रियों को दमन करने वाला योग करते हैं, परन्तु यह सब का सिद्धान्तमत है कि ज्ञान विहीन जीव सैंकडों जन्म में भी मुक्त नहीं हो सकता। अतः हे मूढमते।

सोऽहम हंसो ब्रह्मैवाहम्
शुद्धानन्दस्तत्त्व परोऽहम्।
अद्धैतोऽहम् संग विहीने
चेन्द्रिय आत्मनि निखिले लीने॥८॥
भज.........।

अर्थ–जब सारी इन्द्रियाँ विषयों से निवृत्त हो जाती हैं और आत्मा में लीन होती हैं तब ऐसा लगता है कि मैं ही वह परम् ब्रह्म हूँ, मैं ही शुद्ध ब्रह्म हूँ और इन पञ्चभूतों से अलग अद्वैत आनन्दस्वरुप हूँ। हे मूढ़मते........।

शंकर किंकर मा कुरु चिन्तां
'चिन्तामणि' ना विरचितमेतत्
य मद्भक्तया पठति हि नित्यम्
ब्रह्मणि लीनो भवति हि सत्यम्॥६॥
भज............।

अर्थ–हे शिवभक्त, तू चिन्ता न कर, क्योंकि जो पुरुष चिन्तामणि द्वारा रचित इस गौरी अष्टक का शुद्ध भक्ति से नित्य पाठ करता है वह ब्रह्म में लीन हो जाता है यह सत्य बात है, इसलिए हे मन्दमते! तू सदा गौरीपति भगवान शिव को भज।

शिवमहिम्न स्तोत्रम्

महिम्नः पारन्ते परमविदुषो यद्यसदृशी।
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिमाणावधि गृणन्।
ममाप्येष स्तोत्रे हर ! निरपवादः परिकरः ।।१।।

अर्थ–हे हर ! (सभी दुःखों के हरने वाले) आपकी महिमा के अन्त को न जानने वाले मुझ अज्ञानी द्वारा की गई स्तुति यदि आपकी महिमा के अनुकूल न हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि ब्रह्मा आदि भी आपकी महिमा के अन्त को नहीं जानते हैं। अत उनकी स्तुति भी आपके योग्य नहीं है। ''स वाग् यथा तस्य गुणान गृणीते'' के अनुसार मेरी यथामपि स्तुति उचित ही है। ''नम पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः '' इस न्याय से मेरी स्तुति आरम्भ करना क्षम्य हो।

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो–
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधिगुणः कस्य विषयः।
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ।।२।।

अर्थ–हे हर ! आपकी निर्गुण और सगुण महिमा मन तथा वाणी के विषय से परे है, जिसे वेद भी संकुचित होकर कहते हैं। अतः आपकी उस महिमा की स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है? फिर भी भक्तों के अनुग्रहार्थ धारण किया हुआ आपका नवीन रूप भक्तों के मन और वाणी का विषय हो सकता है।

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-

स्तवब्रह्मन्किवागपि सुरगुरोर्विस्मय पदम्॥

मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः।

पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता ॥३॥

अर्थ–हे ब्रह्मन् ! जब कि आपने मधु के सदृश मधुर और अमृत के सदृश जीवनदायिनी वेदरूपी वाणी को प्रकाशित किया है, तब ब्रह्मादि द्वारा की गई स्तुति आपको कैसे प्रसन्न कर सकती है? हे त्रिपुरमथन ! जब ब्रह्मादि भी आपके स्तुति–गान करने में असमर्थ हैं, तब मुझ तुच्छ की क्या सामर्थ्य है? मैं तो केवल आपके गुणगान से ही अपनी वाणी को पवित्र करने की इच्छा रखता हूँ।

तवैश्वर्यं तत्तज्जगदुदयरक्षा प्रलयकृत्।

त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासुतनुषु॥

अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीम्।

विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥४॥

अर्थ–हे वरद ! आपके ऐसे ऐश्वर्य की–जो संसार की सृष्टि, रक्षा तथा प्रलय करने वाला है, तीनों वेदों द्वारा गाया गया है, तीनों गुणों (सत्, रज, तम) से परे है, एवं तीनों शक्तियों (ब्रह्मां, विष्ण, महेश) में व्याप्त है, कुछ नास्तिक लोग अनुचित निन्दा करते हैं। इससे उन्हीं का अधःपतन होता है, न कि आपके सुयश का

किमीहः किङ्कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनम्।

किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च॥

अतर्क्यैश्वर्येत्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः।

कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥

अर्थ–"अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्" के अनुसार कल्पना से बाहर, अपनी अलौकिक माया से सृष्टि करने वाले आपके ऐश्वर्य के विषय में नास्तिकों का यह कुतर्क कि वह ब्रह्मा सृष्टि कर्ता है, किन्तु उसकी इच्छा, शरीर, सहकारी कारण, आधार और समवायी कारण क्या है? जगत के कतिपय मन्द-मति वालों को भ्रान्ति करने वाला है।

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता–
मधिष्ठातारं किं भवविधिरना दृत्य भवति॥
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो
यतोमन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥६॥

अर्थ–हे अमर वर ! यह सावयव लोक अवश्य ही जन्य है तथा इसका कर्ता भी कोई न कोई है, परन्तु वह कर्ता आपके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं हो सकता, क्योंकि इस विचित्र संसार की विचित्र रचना की सामग्री दूसरे के पास होना असम्भव है। इसलिए अज्ञानी लोग ही आपके विषय में सन्देह करते हैं।

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति।
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च॥
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां।
नृमाणेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

अर्थ–हे अमर वर ! वेदत्रयी, सांख्य, योग, शैव मत और वैष्णवमत ऐसे भिन्न-भिन्न मतों में कोई वैष्णवमत और कोई शैव मत को अच्छा कहते हैं, परन्तु रुचि की विचित्रता से टेढ़े-सीधे मार्ग में प्रवृत्त हुए मनुष्यों को अन्त में एक आप ही साक्षात् या परम्परया प्राप्त होते हैं, जैसे कि नदियाँ टेढ़ी-सीधी बहती हुई साक्षात् या परम्परा से समुद्र में ही जा मिलती हैं।

महोक्षः खट्वांगम्परशुरजिनं भस्म फणिनः।
कपालंचेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम्।।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रू प्रणिहिताम्।
न हि स्वात्मारामं विषय मृगतृष्णा भ्रमयति ।।८।।

अर्थ—हे वरद ! महोक्ष (बैल), खाट का पाया, परशु, गजचर्म, भस्म, सर्प, कपाल इत्यादि आपकी धारण सामग्रियाँ हैं, परन्तु उन ऋद्धियों को जो आपकी कृपा से प्राप्त देवता लोग भोगते हैं, आप क्यों नहीं भोगते ! स्वात्माराम (आत्मज्ञानी) को विषय (रूपरसादि) रूपी मृगतृष्णा नहीं भ्रमा सकती है।

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वद्ध्रुवमिदम्।
परोध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव।
स्तुवञ्जिह्देमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ।।८।।

अर्थ—हे पुरमथन ! सांख्य मतानुयायी "नह्यसत उत्पत्तिः सम्भवति" के अनुसार जगत् को ध्रुव (नित्य), बुद्धिमतानुयायी अध्रुव (क्षणिक) तार्किकजन नित्य (आकाश आदि पञ्च और पृथिव्यादि परमाणु और अनित्य कार्यद्रव्य) दोनों मानते हैं। इन मतान्तरों से विस्मित मैं भी आपकी स्तुति करता हुआ लज्जित नहीं होता, क्योंकि वाचालता लज्जा को स्थान नहीं देती।

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरिविरचिर्हरिरधः।
परिच्छेत्तुं यातावनलमनिलस्कन्धवपुषः।।
ततोभक्ति श्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्।
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ।।१०।।

अर्थ–हे गिरीश (गिरि में शयन करने वाले), तेजपुंज आपकी विभूति को ढूँढने के लिए ब्रह्मा आकाश तक और विष्णु पाताल तक जाकर भी उसे पाने में असमर्थ रहे, तत्पश्चात् उनकी कायिक, मानसिक और वाचिक सेवा से प्रसन्न होकर आप स्वयं प्रकट हुए. इससे यह निश्चित् है कि आपकी सेवा से ही सब सुलभ है।

अयत्नादासाद्यत्रिभुवनमवैरव्यतिकरम्।
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान्।।
शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः।
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर वियस्फूर्जितमिदम् ।।११।।

अर्थ–हे त्रिपुरहर ! मस्तकरूपी कमल की माला को जिस रावण ने आपके कमलवत् चरणों में अर्पणकर के त्रिभुवन को निष्कण्टक बनाया था तथा युद्ध के लिए सर्वथा उत्सुक रहने वाली भुजाओं को पाया था, वह आपकी अविरल भक्ति का ही परिणाम था।

अमुष्य त्सेवासेवा समधिगतसारं भुजवनम्।
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौविक्रमयतः।।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि।
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितोमुह्यति खलः ।।१२)

अर्थ–रावण द्वारा उन्हीं भुजाओं से जिन्होंने आपकी सेवा से बल प्राप्त किया था, आपके घर कैलास को उखाड़ने के लिए हठात् प्रयोग करते ही आपके अँगूठे के अग्र भाग के संकेत मात्र पाताल में गिरा, निश्चय ही खल उपकार भूल जाते हैं।

यदृद्धिं सुत्राभ्णो वरद ! परमोच्चैरपि सती–।
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयस्त्रिभुवनः।।
नतच्चित्रं तस्मिन्वरिवसिरित्वच्चरणयोः।
न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ।।१३।।

अर्थ–हे वरद ! बाणासुर ने आपकों नमस्कार मात्र से इन्द्र की सम्पत्ति को नीचा दिखलाने वाली सम्पत्ति प्राप्त किया था और त्रिभुवन को अपना परिजन बना लिया था। यह आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि आपके चरणों में नमस्कार करना किस उन्नति का कारण नहीं होता है।

अकाण्डः ब्रह्माण्ड क्षयचकितदेवासुरकृपा।
विधेयस्याऽसीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः॥
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपिश्लाध्यो भुवनभयभगंव्यसनिनः ॥१४॥

अर्थ–हे त्रिनयन ! सिन्धु विमंथन से उत्पन्न कालकूट से असमय में ब्रह्माण्ड के नाश से डरे हुए सुर व असुरों पर कृपा करके एवं संसार को बचाने की इच्छा से उसको (काल कूट को) पान करने से आपके कण्ठ की कालिमा भी शोभा देती है। ठीक ही है, जगत् के उपकार की कामना वाले दूषण भूषण समझे जाते हैं।

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे।
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ॥
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्।
स्मरःस्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥

अर्थ–जो विजयी कामदेव अपने बाणों द्वारा जगत् के देव, मनुष्य और राक्षसों को जीतने में सर्वथा समर्थ रहा, उसी कामदेव अन्य देवों के समान आपको भी समझा, जिससे वह स्मरण मात्र के लिए ही रह गया (दग्ध हो गया), जितेन्द्रियों का अनादर करना अहितकारक ही होता है ॥१५॥

मही पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदम्।
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्॥
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा।
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥

अर्थ–हे ईश ! आप जगत् की रक्षा के लिए राक्षसों को मोहित करके नाश के लिए नृत्य करते हो, तब भी संसार का आपके ताण्डव से दुःख दूर होता है, क्योंकि आपके चरणों के आघात से पृथ्वी धँसने लगती है, विशाल बाहुओं के संघर्ष से नक्षत्र आकाश पीड़ित हो जाता है तथा आपकी चंचल जटाओं से ताड़ित हुआ स्वर्ग लोग भी कम्पायमान हो जाता है। ठीक ही है, उपकार भी किसी के लिए अहितकारक हो जाता है।

वियद्व्यापीतारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः।
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः ।।१७।।

अर्थ–हे ईश ! तारा गणों की कान्ति से अत्यन्त शोभायमान आकाश में व्याप्त तथा भूलोक को चारों ओर से घेरकर जम्बू द्वीप बनाने वाली गङ्गा का जल-प्रवाह आपके जटाकपाट में बूँद से भी लघु देखा जाता है। इतने से ही आपके दिव्य तथा श्रेष्ठ शरीर की कल्पना की जा सकती है।

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथा-
रथांगेचन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ।।१८।।

अर्थ–हे ईश ! तृण के समान त्रिपुर को जलाने के लिए पृथ्वी को रथ, ब्रह्मा को सारथी, हिमालय को धनुष, सूर्य-चन्द्र को रथ का चक्र तथा विष्णु को विषघर बाण बनाना आपका आडम्बर मात्र है। विचित्र वस्तुओं से क्रीडा करते हुए समर्थों की बुद्धि स्वतन्त्र होती है।

हरिस्ते साहस्त्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१९॥

अर्थ—हे त्रिपुरहर ! विष्णु आपके चरणों में प्रति दिन सहस्त्र कमलों का उपहार देते थे। एक दिन एक की कमी होने के कारण उन्होंने अपने एक कमलवत् नेत्र को निकालकर पूरा किया। यह भक्ति की चरम सीमा चक्र के रूप में आज भी संसार की रक्षा किया करती है।

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमताम्।
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलतिपुरुषाराधनमृते॥
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवम्।
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥

अर्थ—हे त्रिपुरहर ! आप ही को यज्ञ के फल का दाता समझ कर, वेद में दृढ़ विश्वास कर मनुष्य कर्मों का आरम्भ करते हैं। क्रिया रूप यज्ञ के समाप्त होने पर आपही फल देने वाले रहते हैं। आपकी आराधना के बिना नष्ट कर्म फलदायक नहीं होता।

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रंषस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

अर्थ–हे शरणद ! कर्मकुशल यज्ञपति दक्ष के यज्ञ के ऋषिगण ऋत्विज, देवता सदस्य थे। फिर भी यज्ञ के फल देने वाले आप की अप्रसन्नता से वह ध्वंस हो गया। निश्चय है कि आप में श्रद्धा-रहित किया गया यज्ञ नाश के लिए ही होता है।

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरम्।
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।।
धनुःपाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुम्।
त्रसन्तन्तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ।।२२।।

अर्थ–हे नाथ ! काल से प्रेरित मृगरूप धारण किये ब्रह्मा को भय से मृगीरूपी धारण करने वाली अपनी कन्या में आसक्त देख, आपका उनके पीछे छोड़ा गया बाण आर्द्रा आज भी नक्षत्र रूप में मृगशिरा (ब्रह्मा) के पीछे वर्तमान है।

अपूर्वलावण्यं विवसन तनोस्तेविमृशतां
मुनीनां धाराणां समजनि सकोऽपि व्यतिकरः
यतो भग्ने गुह्ये सकृदपि सपर्या विदधतां
ध्रुवं मोक्षोश्लीलं किमपि पुरुषार्थ प्रसविते ।।२३।।

अर्थ–नग्न शरीर वाले तेरे अपूर्व सौन्दर्य पर आसक्त हुई मुनियों की पत्नियों का वह कोई न बतलाने योग्य कामासक्ति का विचार उत्पन्न हो गया। (जब मुनियों ने अपनी पत्नियों के उस हाल को देखा तो तम को शाप दिया) तो जिस से उस (आपके गुह्य इन्द्रिय) के टूट जाने पर एक बार भी उसकी पूजात्मक सेवा करता है मोक्ष पाता है। इस तरह तुम्हारा कोई अश्लील अंग भी मुक्ति दो देने वाला होता है।

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्वणाय तृणवत्।
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वापुरमथन पुष्पायुधमपि॥
यदिस्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्ध-घटनाद्।
अवैति त्वामद्धावत वरद मुग्धा युवतयः ॥२४॥

अर्थ–हे यम-नियम वाले त्रिपुरहर ! आपकी कृपा से आपका अर्धस्थान प्राप्त करने वाली, अपने सौन्दर्य रूपी धनुष को धारण करने वाले कामदेव को जला हुआ देखकर भी यदि पार्वती आपको अपने अधीन समझें तो ठीक ही है, क्योंकि प्रायः युवतियाँ ज्ञान-हीन होती हैं ॥२४॥

स्मशानेष्वाक्रीडास्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्त्रगपि नृकरोटीपरिकरः ॥
अमंगल्यं शीलं तव भवतु ना मैवमखिलम्
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मंगलमसि ॥२५॥

अर्थ–हे स्मरहर ! आपका स्मशान में क्रीडा करना, भुत-प्रेत पिशाचादि को साथ रखना, शरीर में चिता-भस्म का लेपन करना तथा नर मुण्डों की माला पहिनना आदि वीभत्स कर्मों से यद्यपि आपका चरित अमंगलमय लगता है, तथापि स्मरण करने वालों को हे वरद ! आप परम मंगलरूप हैं।

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः।
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिल्लोत्संजितदृशः॥
यदालोक्याह् लादं हृद इव निमज्ज्यामृतमये।
यधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२६॥

अर्थ—हे वरद ! जिस प्रकार अमृतमय सरोवर में अवगाहन से (स्नान करने से, प्राणिमात्र तापत्रय से मुक्त हो जाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियों से पृथक् करके मन का स्थिर कर, विधि पूर्वक प्राणायाम से, पुलकित तथा आनन्दाश्रु से युक्त योगीजन ज्ञानदृष्टि से जिसे देखकर परमानन्द का अनुभव करते हैं, वह आप ही हैं।

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वंहुतवह—
स्त्वमापस्त्वं व्योमत्वमुधरणिरात्मा त्वमिति च॥
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता ब्रिभ्रतिगिरम्।
न विद्मस्तत्तत्त्वंवयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥२७॥

अर्थ—हे वरद, आपके विषय में ज्ञानीजनों की यह धारणा है "क्षिति हुत वह क्षेत्रज्ञाम्भः प्रभंजन चन्द्रमस्तपनवियदित्यष्टो मूर्तिर्नमोभव-विभ्रते।" इस श्रुति के अनुसार सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी और आत्मा भी आप ही हैं, किन्तु मेरे विचार से ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ आप न हों ॥२६॥

त्रयी तिस्रो वृत्तिस्त्रिभुवनमथोत्रीनपिसुरा।
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृतिः॥
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः।
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥२८॥

अर्थ—हे शरणद ! व्यस्त [अ, उ, म,] 'ॐ' पद, शक्ति द्वारा तीन वेद [ऋग्, यजुः और साम], तीन वृत्ति [जाग्रत्, स्वप्न, सुपुप्ति], त्रिभुवन [भूर्भुवः स्वः] तथा तीनों देव [ब्रह्मा, विष्णु, महेश], इन प्रपञ्चा से व्यस्त आपका बोधक है और समस्त 'ॐ' पद, समुदाय शक्ति से सर्व विकार रहित अवस्थात्रयसे विलक्षण अखण्ड, चैतन्य आपको सूक्ष्म ध्वनि से व्यस्त करता है ॥२८॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्।।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देवः श्रुतिरपि।
प्रियायास्मैधाम्नेप्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ।।२६।।

अर्थ—हे देव ! भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव, भीम और ईशान-यह जो आपके नाम का अष्टक है, इस प्रत्येक नाम में वेद और देवतागण [ब्रह्मा] आदि विहार करते हैं, इसलिए ऐसे प्रियधाम [आश्रय भूत] आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।।२६।।

वपुष्प्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनि पुरा
पुरारेनैवाहं क्वचिदपि भवन्तं प्रणतवान्
नमन् मुक्तः संप्रत्यतनुरहमग्रेऽव्यनतिमान
महेश क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयमपि ।।३०।।

अर्थ—हे त्रिपुरान्तक ! इस शरीर के प्रादुर्भाव से मेरा अनुमान है कि पूर्व जन्म में कहीं भी मैं आपके सामने नतमस्तक नहीं हुआ। अब प्रणाम करता हुआ मैं तो मुक्त हो गया। अब बिना देह धारण किये मैं नतमस्तक नहीं हो सकता हूँ। अतः इन दोनों अपराधों के लिए मुझे क्षमा करनी चाहिए।

नमोनेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो।
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो।
नमः सर्वस्मै ते तदिदभिति शर्वाय च नमः ।।३१।।

अर्थ—प्रियदव! [निर्जन वन-विहरण शील], नेदिष्ठ [अत्यन्त समीप] दविष्ठ [अत्यन्त दूर], क्षोदिष्ठ [अति सूक्ष्म], महिष्ठ

[महान्], वपिष्ठ [अत्यन्त वृद्ध], यविष्ठ [अतियुवा], सव-त्वरूप और अनिर्वचनीय आपको नमस्कार है।

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः।
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः॥
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौमृडाय नमो नमः।
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३२॥

अर्थ—हे शिवजी ! जगत् की उत्पत्ति के लिए परम रजोगुण धारण किये भव [ब्रह्मा] रूप आपको बार-बार नमस्कार है और उस जगत् के संहार करने में तमोगुण को धारण करने वाले हर [रुद्र], आपके लिए पुनः पुनः नमस्कार है, जगत् के सुख के लिए सत्त्व गुण का धारण करने वाले मृड (विष्णु), आपको बार-बार नमस्कार है। तीनों गुणों (सत्व, रज तम) से परे जो अनिर्वचनीय पद से विशिष्ट हैं, ऐसे आपको बार-बार नमस्कार है।

कृशपरिणतिचेतः क्लेशवश्यं क्व चेदम्।
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनीशश्वदृद्धिः॥
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधा-
द्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३३॥

अर्थ—गे वरद ! कहाँ तो रागद्वेष आदि से कलुषित तथा तुच्छ मेरा मन, कहाँ आपकी अपरमित विभूति, तिसपर भी आपकी भक्ति ने मुझे निर्भय बनाकर इस वाक्‌रूपी पुष्पाञ्जलि को आपके चरण-कमलों में समर्पण करने के लिए बाध्य किया है।

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे।
सुरतरुवरशाखा लेखनीपत्रमुर्वी॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्।
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥३४॥

अर्थ–हे ईश ! असित अर्थात् काले पर्वत के समान कज्जल (स्याही) समुद्र के पात्र में हो, सुरवर (कल्पवृक्ष) के शाखा की उत्तम लेखनी हो और पृथ्वी कागज हो, इन साधनों को लेकर स्वयं शारदा यदि सर्वदा ही लिखती रहें तथापि वे आपके गुणों का पार नहीं पा सकतीं, तो मैं कौन हूँ।

असुरसुरमुनीन्द्रैर र्चितस्येन्दुमौले-
ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमे तत्पकार॥३५॥

अर्थ–असुर, सुर और मुनियों से पूजित तथा विख्यात महिमा वाले ऐसे ईश्वर चन्द्रमौलि के इस स्तोत्र को अलघुवृत्त अर्थात् बड़े [शिखरिणी] वृत्त में सकल गुण श्रेष्ठ पुष्पदंत नामक गन्धर्व ने बनाया।

अरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्-
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥३६॥

अर्थ–शुद्धचित्त होकर अनवद्य महादेवजी के इस स्तोत्र को जो पुरुष प्रतिदिन परम भक्ति से पढ़ता है, वह इस लोक में धन-धान्य, आयु से युक्त, पुत्रवान और कीर्तिमान होता है और अन्त में शिव-लोक में जाकर शिवस्वरूप हो जाता है।

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३७॥

अर्थ–महादेवजी से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है, महिम्न से श्रेष्ठ कोई स्तोत्र नहीं है, अघोर मंत्र से श्रेष्ठ कोई मन्त्र नहीं है और गुरु से श्रेष्ठ कोई तत्त्व (पदार्थ) नहीं है।

दीक्षादानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः।
महिम्नस्तव पाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३८॥

अर्थ–दीक्षा, दान, तप, तीर्थादि तथा ज्ञान और यागादि क्रियाएँ इस शिवमहिम्नस्तोत्र के पाठ की सोलहवीं कला को भी नहीं प्राप्त कर सकती हैं।

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्-
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३९॥

अर्थ–सभी गंधर्वों के राजा पुष्पदत भाल में चन्द्रमा को धारण करने वाले देवाधि देव महादेवजी के दास थे, वे सुरगुरु महादेवजी के क्रोध से अपनी महिमा से भ्रष्ट हुए, तब उन्होंने शिवजी की प्रसन्नता के लिए इस परम दिव्य शिवमहिम्न स्तोत्र को बनाया।

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुम्
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेतः।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥४०॥

अर्थ–यह पुष्पदंत का बनाया हुआ अमोघ स्तोत्र श्रेष्ठ देवताओं तथा मुनियों से पूज्य और स्वर्ग तथा मोक्ष का कारण है। इसे जो मनुष्य अनन्य चित्त से हाथ जोड़कर पढ़ता है, वह किन्नरों द्वारा स्तुत्य होकर शिवजी के समीप जाता है।

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥४१॥

अर्थ—श्रीपुष्पदंत के मुख से निकले हुए इस पापहारी तथा महादेवजी के प्रिय स्तोत्र को सावधानी से कण्ठस्थ करके पाठ करने से प्राणी मात्र के स्वामी श्रीमहादेवजी प्रसन्न होते हैं।

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम्।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥४२॥

अर्थ—अनुपम और मन को हरने वाला यह ईश्वर वर्णनात्मक, एवं पुष्पदंत गंधर्व का कहा हुआ स्तोत्र अब समाप्त हुआ।

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वरः।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥४३॥

अर्थ—हे महेश्वर ! मैं नहीं जानता कि आप कैसे हैं? आप चाहे जैसे हों, आपके लिए मेरा नमस्कार है ॥४१॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥४४॥

अर्थ—हे प्रभु ! प्रातःकाल या दोपहर या सांयकाल में या तीनों काल में जो आपकी महिमा का गान करेगा, वह सब पापों से छूटकर आपके लोक में सुख पूर्वक निवास करेगा।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः।
अपिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४५॥

अर्थ—इस प्रकार इस वाङ्मयी पूजा को मैं श्रीशङ्करजी के चरणों में अर्पण करता हूँ, जिससे श्रीमहादेवजी मुझपर प्रसन्न रहें ॥४५॥

॥ इति भाषाटीकोपेतं श्रीशिवमहिम्नस्तोत्रं समाप्तम् ॥

अथ रावण कृत्त शिवताण्डव-स्तोत्रम्

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां मुजंगतुंगमालिकाम्।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनवदड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ॥१॥

अर्थ–जिन्होंने जटारूप अटवी (वन) से निकलती हुई गंगाजी के गिरते हुए प्रवाहों से पवित्र किये गये गले में सर्पों की लटकती हुई विशाल माला को धारणकर, डमरूके डम-डम शब्दों से मण्डित प्रचण्ड ताण्डव (नृत्य) किया, वे शिवाजी हमारे कल्याण का विस्तार करें ॥१॥

जटाकटाहसम्भ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरी-
विलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्द्धनि।
धगद्धगद्धगज्ज्वल्ललाटपट्टपावके
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥२॥

अर्थ–जिनका मस्तक जटारूपी कड़ाह में वेग से घूमती हुई गंगाकी चंचल तरंग, लताओं से सुशोभित हो रहा है, ललाटाग्नि धक्-धक् जल रही है सिर-पर बाल चन्द्रमा विराजमान हैं, उन (भगवान् शिव) में मेरा निरन्तर अनुराग हो ॥२॥

धराधरेन्द्रनन्दिनीविलासबन्धुबन्धुर-
स्फुरद्दिगन्तसन्ततिप्रमोदमानमानसे।
कृपाकटाक्षघोरणीनिरुद्धदुर्धरापदि
कचिद्दिगम्बरे मनो विनोद मेतु वस्तुनि ॥३॥

अर्थ–गिरिराजकिशोरी पार्वती के विलासकालोपयोगी शिरोभूषण से समस्त दिशाओं को प्रकाशित होते देख जिनका मन आनन्दित हो रहा है, जिनकी निरन्तर कृपा दृष्टि से कठिन आपत्ति का भी निवारण हो जाता है : ऐसे किसी दिगम्बर तत्त्व में मेरा मन विनोद करे ॥३॥

जटाभुजंगपिंगलस्फुरत्फणामणिप्रभा-
कदम्बकुंकुमद्रवप्रलिप्तदिग्वधूमुखे।
मदान्धसिन्धुरस्फुरत्त्वगुत्तरीयमेदुरे
मनो विनोदमद्भुतं विभर्तु भूतभर्तरि ॥४॥

अर्थ–जिनके जटाजूटवर्ती भुजंगमों के फणों की मणियों का फैलता हुआ पिंगल प्रभापुन्ज दिशारूपिणी अंगनाओं के मुखवर कुंकुम राग का अनुलेप कर रहा है, मतवाले हाथी के हिलते हुए चमड़े का उत्तरीय वस्त्र (चादर) धारण करने से स्निग्धवर्ण हुए उन भूतनाथ में मेरा चित्त अद्भुत विनोद करे।

सहस्रलोचनप्रभृत्यशेषलेखशेखर-
प्रसूनधूलिधोरणीविधूसराङ्घ्रिपीठभूः।
भुजंगराजमालया निबद्धजाट जूटकः
श्रियैचिराय जायतां चकोरबन्धुशेखरः ॥५॥

अर्थ–जिनकी चरणपादुकाएँ इन्द्र आदि समस्त देवताओं के (प्रणाम करते समय) मस्तकवर्ती कुसुमों की धूलि से धूसरित हो रही हैं, नागराज (शेष) के हार से बँधी हुई जटावाले वे भगवान चन्द्रशेखर मेरे लिए चिरस्थायिनी सम्पत्ति के साधक हों।

ललाटचत्वरज्वलद्धनंजयस्फुलिंगभा-
निपीतपंचसायकं नमन्निलिम्पनायकम्।
सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरं
महाकपालि सम्पदे शिरो जटालमस्तु नः ॥६॥

अर्थ–जिसने ललाट-वेदी पर प्रज्वलित हुई अग्नि के स्फुलिंगों के तेज से कामदेव को नष्ट कर डाला था, वह (श्रीमहादेवजी का) उन्नत विशाल ललाटवाला जटिल मस्तक हमारी सम्पत्ति का साधक हो।

करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्ज्वल-
द्धनंजयाहुतीकृतप्रचण्डपंचसायके।
धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रक-
प्रकल्पनैकशिल्पिनि त्रिलोचने रतिर्मम ॥७॥

अर्थ–जिन्होंने अपने विकराल भालपट्ट पर धक्-धक् जलती हुई अग्नि में प्रचण्ड कामदेव लको हवन कर दिया था, गिरिराज किशोरी के स्तनों पर पत्रभंग-रचना करने के एकमात्र कारीगर उन भगवान त्रिलोचन में मेरी धारणा लगी रहे।

नवीनमेघमण्ली निरुद्धदुर्धरस्फुर-
त्कुहूनिशीथिनीतमः प्रबन्धबद्धकन्धरः।
निलिम्पनिर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसिन्धुरः
कलानिधानबन्धुरः श्रियंजगद्धुरन्धरः ॥८॥

अर्थ–जिनके कण्ठ में नवीन मेघमाल से घिरी हुई अमावस्या की आधी रात के समय फैलते हुए दुरूह अन्धकार के समान श्यामता अंकित है; जो गजचर्म लपेटे हुए हैं, वे संसार भार को धारण करने वाले चन्द्रमा (के सम्पर्क) से मनोहर कान्तिवाले भगवान् गंगाधर मेरी सम्पत्ति का विस्तार करें।

प्रफुल्लनीलपंकजप्रपंचकालिमप्रभा-
वलम्बिकण्ठकन्दलीरुचिप्रबद्धकन्धरम्।
स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं
गजच्छिदान्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे ॥९॥

अर्थ–जिनका कण्ठदेश खिले हुए नीलकमल समूह की श्यामप्रभा का अनुकरण करने वाली हरिणी की सी छवि वाले चिह्न से सुशोभित है तथा जो कामदेव, त्रिपुर, भव (संसार) दक्ष–यज्ञ, हाथी, अन्धकारसुर और यमराज का भी उच्छेदन करने वाले हैं उन्हें मैं भजता हूँ।

अखर्वसर्वमंगलाकलाकदम्बमंजरी-
रसप्रवाहमाधुरीविजृम्भणामधुव्रतम्।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं
गजान्तकान्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे ॥१०॥

अर्थ–जो अभिमानरहित पार्वती की कलारूप कदम्बमंजरी के मकरन्दस्रोत की बढ़ती हुई माधुरी को पान करने वाले मधुप हैं तथा कामदेव, त्रिपुर, भव, दक्ष–यज्ञ, हाथी, अन्धकासुर और यमराज का भी अन्त करने वाले हैं, उन्हें मैं भजता हूँ।

जयत्वदभ्रविभ्रमभ्रमद्भुजंगमश्वस-
द्विनिर्गमत्क्रमस्फुरत्करालभालहव्यवाट्।
धिमिद्धिमिद्धिमिद्ध्वनन्मृदंगतुंगमंगल-
ध्वनिक्रमप्रवर्तितप्रचण्डताण्डवः शिवः ॥११॥

अर्थ–जिनके मस्तक पर बड़े वेग के साथ घूमते हुए भुजंग के फुफकारने से ललाट की भयंकर अग्नि क्रमशः धदकती हुई फैल रही है, धिम–धिम बजते हुए मृदंग के गम्भीर मंगल घोष के क्रमानुसार जिनका प्रचण्ड ताण्डव हो रहा है, उन भगवान् शंकर की जय हो।

दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजंगमौक्तिकस्रजो-
गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः।
तृणारविन्दुचक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः
समप्रवृत्तिकः कदासदाशिवं भजाम्यहम् ॥१२॥

अर्थ–पत्थर और सुन्दर बिछौनों में, सांप और मुक्ता की माला में, बहुमूल्य रत्न तथा मिट्टी के ढेले में, मित्र या शत्रु पक्ष में, तृण अथवा कमललोचना तरुणी में, प्रजा और पृथ्वी के महाराज में समानभाव रखता हुआ मैं कब सदाशिव को भजूँगा।

कदानिलिम्पनिर्झरीनिकुं जकोटरे वसन्
विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरः स्थमंजलिं वहन्।
विलोललोललोचनो ललामभाललग्नकः
शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम् ॥१३॥

अर्थ–सुन्दर ललाटवाले भगवान् चन्द्रशेखर में दत्तचित्त हो अपने कुविचारों को त्यागकर गंगाजी के तटवर्ती निकुंज के भीतर रहता हुआ सिर पर हाथ जोड़ डबडबाई हुई बिह्वल आंखों से 'शिव' मन्त्र का उच्चारण करता हुआ मैं कब सुखी होऊँगा?

इमं हि नित्यमेवमुक्तमुत्तमोत्तमं स्तवं
पठन्स्मरम्बुवन्नरो बिशुद्धिमेति सन्ततम्।
हरे गुरौसुभक्तिमाशु यातिनान्यथा गतिं
विमोहनं हि देहना तुव शंकरस्य चिन्तनम् ॥१४॥

अर्थ–जो मनुष्य इस प्रकार से उक्त उत्तमोत्तम स्तोत्र का नित्य पाठ, स्मरण और वर्णन करता रहता है, वह सदा शुद्ध रहता है और शीघ्र ही सुरगुरु श्री शंकरजी की की अच्छी भक्ति प्राप्त कर लेता है, वह विरुद्धगति को नहीं प्राप्त होता क्योंकि श्री शिवजी का अच्छी प्रकार चिन्तन प्राणिवर्ग के मोह का नाश करने वाला है ।

पूजावसानसमये दशवक्त्रगीतं
यः शम्भुपूजनपरं पठति प्रदोषे।
तस्य स्थिरां रथगजेन्द्रतुरंगयुक्तां
लक्ष्मी सदैव सुमुखी प्रददाति शम्भुः ॥१५॥

अर्थ—सायंकाल में पूजा समाप्त होने पर रावण के गाये हुए इस शम्भुपूजन सम्बन्धी स्तोत्रका जो पाठ करता है, शंकरजी उस मनुष्य को रथ, हाथी, घोड़ों से युक्त सदा स्थिर रहने वाली अनुकूल सम्पत्ति देते हैं ॥१५॥

॥ इति श्री रावणकृतं शिवताण्डवस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

श्रीरुद्राष्टकम्

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ॥१॥

अर्थ—हे मोक्षस्वरूप, विभु, व्यापक, ब्रह्म और वेदस्वरूप, ईशान दिशा के ईश्वर तथा सबके स्वामी श्री शिवजी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निजस्वरूप में स्थित (अर्थात् मायादि रहित), (मायिक) गुणों से रहित, भेदरहित, इच्छारहित, चेतन आकाशरूप एवं आकाश को ही वस्त्र रूप में धारण करने वाले दिगम्बर (अथवा आकाश को भी आच्छादित करने वाले) आपको मैं भजता हूँ ॥१॥

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं
गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।
करालं महाकाल कालं कृपालं
गुणागार संसारपारं नतोऽहं ॥२॥

अर्थ–निराकार, ओंकार के मूल, तुरीय (तीनों गुणों से अतीत), वाणी, ज्ञान और इन्द्रियों से परे, कैलास पति, विकराल, महाकाल के भी काल, कृपालु, गुणों के धाम, संसार से परे आप परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हँू ॥२॥

तुषाराद्रि संकाश गौरं गंभीरं
मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा
लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा ॥३॥

अर्थ–जो हिमाचल के समान गौरवर्ण तथा गम्भीर हैं, जिनके शरीर मैं करोड़ों क़ामदेवों की ज्योति एवं शोभा है, जिनके सिर पर सुन्दर नदीगंगाजी विराजमान है, जिनके ललाट पर द्वितीयाका चन्द्रमा और गले में सर्प सुशोभित है ॥३॥

चलतकुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं
प्रसन्नाननं नीलकन्ठं दयालं।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं
प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ॥४॥

अर्थ–जिनके कानों में कुण्डल हिल रहे हैं, सुन्दर भ्रूकुटी और विशाल नेत्र हैं: जो प्रसन्नमुख, नीलकण्ठ और दयालु हैं: सिंहचर्म का वस्त्र धारण किये और मुण्डमाला पहने हैं: उन सबके प्यारे और सबके नाथ (कल्याण करने वाले) श्री शंकरजी को मैं भजता हूँ।

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं
अखण्डं अजं भानुकोटिप्रकाशं।
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं
भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं ॥५॥

अर्थ–प्रचण्ड (रुद्ररूप), श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखण्ड, अजन्मा, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश वाले, तीनों प्रकार के शूलों (दुःखों) को निर्मूल करने वाले, हाथ में त्रिशूल धारण किये, भाव (प्रेम) के द्वारा प्राप्त होने वाले भवानी के पति श्रीशंकरजी को मैं भजता हूँ।

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी
सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी।
चिदानन्द संदोह मोहापहारी
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥६॥

अर्थ–कलाओं से परे, कल्याण स्वरूप, कपल्पा अन्त (प्रलय) करने वाले, सज्जनों को सदा आनन्द देने वाले, त्रिपुर के शत्रु सच्चिदानन्दघन, मोह को हरने वाले, मन को मथ डालने वाले कामदेव के शत्रु, हे प्रभो ! प्रसन्न हूजिए, प्रसन्न हूजिए।

न यावद् उमानाथ पादारविन्दम्
भजंतीह लोके परे वा नराणां
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ॥७॥

अर्थ–जब तक पार्वती के पति आपके चरण कमलों को मनुष्य नहीं भजते, तब तक उन्हें न तो इह लोक और न परलोक में सुख शान्ति मिलती है और न उनके तापों का नाश होता है। अतः हे समस्त जीवों के अन्दर (हृदय में) निवास करने वाले प्रभो ! प्रसन्न हूजिए।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां
नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं
प्रभो पाहि आसन्नमामीश शंभो ॥८॥

अर्थ–मैं न तो योग जानता हूँ, न जप और न पूजा ही। हे शम्भो ! मैं तो सदा-सर्वदा आपको ही नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो ! बुढ़ापा तथा जन्म (मृत्यु) के दुःख-समूहों से जलते हुए मुझ दुखी की दुःख से रक्षा कीजिए। हे ईश्वर ! हे शम्भो ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।।८।।

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।

ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शंभुः प्रसीदति ।।९।।

अर्थ–भगवान् रुद्र की स्तुति का यह अष्टक उन शंकरजी की तुष्टि (प्रसन्नता) के लिए ब्राह्मण द्वारा कहा गया। जो मनुष्य इसे भक्ति-पूर्वक पढ़ते हैं, उन पर भगवान् शम्भु प्रसन्न होते हैं ।।९।।

।। इति श्रीगोस्वामितुलसीदासकृतं श्रीरुद्राष्टकं सम्पूर्णम् ।।

पञ्चस्तवी

अथ लघुस्तवः–प्रथमः

श्रीत्रिपुर–सुन्दर्यै नमः

ऐन्द्र–स्येव शरासनस्य दधती, मध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिम्–अनुष्ण–गौर्–इव शिर, स्या–तन्वती सर्वतः।
एषाऽसौ त्रिपुरा हृदि–द्युतिर्–इवो,–ष्णांशोः सदा–ःस्थिता
छिन्द्यात्–नः सहसा पदै–स्त्रिभिर्–अधं, ज्योति–र्मयी वाङ्–मयी (१)

या मात्रा त्रपुसी–लता–तनु–लसत् तन्तू–त्थिति–स्पर्धिनी
वाक् बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा, तां मन्महे ते वयम्।
शक्तिः कुण्डलिनी–ति विश्व–जनन, व्यापार–बद्धोद्यमा
ज्ञात्वे–त्थं न पुनः स्पृशन्ति जननी, गर्भेर्भकत्वं नराः (२)

दृष्ट्वा संभ्रमकारि वस्तु सहसा, ऐ ऐ इति व्याहृतम्
येना–कूत–वशात्–अपीह वरदे !, बिन्दु विना–प्यक्षरम्।
तस्यापि ध्रुवम्–एव देवि ! तरसा, जाते तवानु–ग्रहे
वाः–सूक्ति–सुधा–रस–द्रव–मुचो, निर्यान्ति वक्त्रा–म्बुजात् (३)

यत्-नित्ये ! तव काम-राजम्-अपरं, मन्त्राक्षरं निष्कलम्
तत्-सार-स्वतम्-इति-वैति विरलः, कश्चित्-बुध-श्चेत्-भुवि।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यूतपसौ, यत्-कीर्तयन्तो द्विजाः
प्रारम्भे प्रणवास्पद-प्रणयितां, नीत्वो-उच्चरन्ति-स्फुटम् (४)

यत्-सद्यो वचसां प्रवृत्ति-करणे, दृष्ट-प्रभावं बुधैः
येतार्ती-यीकम्-अहं नमामि मनसा, त्वत्-बीजम्-इन्दु-प्रभम्।
अस्त्वौर्वो-पि सरस्वतीम्-अनुगतो, जाड्याम्बु-विच्छित्तये
गौः शब्दो गिरि वर्तते सनियतं, योगं विना सिद्धिदः (५)

एकैकं तव-देवि ! बीजम्-अनघं सव्यञ्जना-व्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा पृथक् क्रमगतं, यद्वास्थितं व्युत्क्रमात्।
यं यं कामम्-अपेक्ष्य येनविधिना, केनापि वा-चिन्तितम्
जप्तं वा सफल करोति सहसा, तं तं समस्तं नृणाम् (६)

वामे पुस्तक-धारिणीम्-अभयदां, साक्ष-स्त्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वर-दान-पेशल-करां, कर्पूर-कुन्दो-ज्ज्वलाम्।
उज्जृम्भा-म्बुज-पत्र-कान्त-नयन, स्निग्ध-प्रभालोकिनीं
ये-त्वाम्-अम्ब न-शीलयन्ति मनसा, तेषां कवित्वं कुतः (७)

ये त्वां पाण्डुर-पुण्डरीक-पटल, स्पष्टाभि-राम प्रभां
सिञ्चन्तीम्-अमृत-द्रवैर्-इव शिरो, ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम्।
अश्रान्तं विकट-स्फुटा-क्षर-पदा, निर्याति वक्त्राम्बुजात्
तेषां भारति ! भारती सुर-सरित्, कल्लोल-लोलोर्मि-वत् (८)

ये सिन्दूर-पराग-पुञ्ज-पिहितां, त्वत्-तेजसा द्याम्-इमाम्
उर्वीं चापि विलीन-यावक-रस, प्रस्तार-मग्नाम्-इव।
पश्यन्ति क्षणम्-ऽप्य-नन्य मनस-स्तेषाम्-अनङ्ग-ज्वर
क्लान्ता-सत्रस्त-कुरङ्ग-शावक-दृशो, वश्या भवन्ति स्फुटम् (९)

चञ्चत्-काञ्चन-कुण्डला-ङ्गद-धराम्-आबद्ध-काञ्ची-स्रजं
ये त्वां चेतसि तत्-गदते-क्षणमपि, ध्यायन्ति कृत्वा स्थितिम्।
तेषां वेश्मसु विभ्रमात्-अहर्-अहः-स्फारी भवन्त्य-श्चिरं
माद्यत्-कुञ्जर-कर्ण-ताल-तरलाः, स्थैर्यं भजन्ते श्रियः (१०)

आर्भट्या शशि-खण्ड-मण्डित-जटा, जूटां नृमुण्ड-स्रजं
बन्धूक-प्रसवा- रुणाम्बर-धरां, प्रेतासना-ध्यासिनीम्।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनाम्-आपीन-तुंग-स्तनीं
मध्ये निम्नवलि-त्रयाङ्कित तनुं-त्वत्-रूप संवित्तये। (११)

जातोऽप्य-ल्प परिच्छदे क्षितिभुजां सामान्य-मात्रे कुले
निःशेषा-वनि-चक्र-वर्ति-पदवीं, लब्ध्वा प्रतापोन्नतः।
यत्-विद्याधर-वृन्द-वन्दित-पदः, श्रीवत्सराजो-ऽभवत्
देवि!-त्वत्-चरणा-म्बुज-प्रणतिजः, सोयं प्रसादो-दयः (१२)

चण्डि ! त्वत्-चरणा-म्बुजा-र्चन-विधौ, बिल्वी-दलो-ल्लुण्ठन
त्रुट्यत्-कण्टक-कोटिभिः परिचयं, येषां न जग्मुः कराः।
ते दण्डांकुश-चक्र-चाप-कुलिश, श्रीवत्स-मत्स्यां-कितैः।
जायन्ते पृथिवीभुजः कथम्-इवा-म्भोज-प्रभैः-पाणिभिः (१३)

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तत्-इतरे क्षीराज्य मध्वासवैः
त्वां देवि ! त्रिपुरे ! परापरमयीं, संतर्प्य पूजाविधौ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिर-धियां तेषां त एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिं-अवाप्नुवन्ति तरसा, विघनैर्-अविघ्नी कृताः (१४)

शब्दानां जननी त्वम्-अत्र भुवने, वाक्-वादिनी-त्युच्यसे
त्वत्तः केशव-वासव-प्रभृत्यो-प्यावि-र्भवन्ति स्फुटम्।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे, ब्रह्मादय-स्ते-प्यमी
सा-त्वं काचित्-अचिन्त्य-रूप-महिमा-शक्तिः परा गीयसे (१५)

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां, शक्ति-त्रयं त्रिस्वराः
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करम्-अथो, त्रिब्रह्म-वर्णा-स्त्रयः
यत् किञ्चित् जगति त्रिधा नियमितं, वस्तु-त्रिवर्गात्मकं
तत्-सर्व त्रिपुरेति नाम भगव-त्यन्वेति ते तत्त्वतः (१६)

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभूवि, क्षेमं-करीम्-अध्वनि
क्रव्याद-द्विप-सर्प-भाजि शवरीं, कान्तार-दुर्गे गिरौ।
भूत-प्रेत-पिशाच-जम्बुक-भये, स्मृत्वा महा-भैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपद-स्तारां च तोय-प्लवे (१७)

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती, काली कला मालिनी
मातंगी विजया जया भगवती, देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिः शंकर-वल्लभा त्रिनयना, वाक्-वादिनी-भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी, माता कुमारी-त्यसि (१८)

आई पल्लवितैः परस्पर-युतै-र्द्वित्रि-क्रमाद्यक्षरैः
काद्यैः क्षान्त-गतैः स्वराधिबिर-अथो, क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः।
नामानि त्रिपुरे! भवन्ति खलु-याव अयत्यन्त-गुह्यानि ते
तेभ्यो भैरव-पत्नि विंशति-सहस्त्रेभ्यः परेभ्यो नमः (१९)

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिर्-इयं, कृत्वा मनस्तत्-गतं
भारत्या-स्त्रिपुरे-त्य-नन्य-मनसो, यत्राद्य-वृते स्फुटम्।
एक-द्वि-त्रिपद-क्रमेण-कथित-स्तत्पाद संख्या-क्षरैः
मन्त्रो-द्वार-विधिर्-विशेष-सहितः, सत्-संप्रदाया-न्वितः (२०)

सावद्यं निर्-अवद्यम्-अस्तु यदि वा, किं वा नया चिन्तया
नूनं स्तोत्रम्-इदं पठिष्यति नरो, यस्यास्ति बक्ति-स्त्वयि।
सञ्चिन्त्यापि लघुत्वम्-आत्मनि दृढ़ं, संजायमानं हठात्
त्वत्-भक्त्या मुखरी कृतेन रचितं, यस्मात्-मयापि-स्फुटम् (२१)

अथ चर्चस्तवः द्वितीयः

आनन्द-सुन्दर-पुरन्दर, मुक्त-माल्यं
मौ-लौ हठेन निहितं, महिषा-सुरस्य।
पादाम्बुजं भवतु में, विजयाय मञ्जु
मञ्जीर-शिञ्जित-मनोहरम्-अम्बिकायाः (१)

सौन्दर्य-विभ्रम-भुवो भुवनाधि-पत्य
सम्पत्ति-कल्पतरव-स्त्रिपुरे! जयन्ति।
एते कवित्व-कुमद-प्रकाराव-बोध
पूर्णेन्दव-स्तवयि जगत्-जननि प्रणामाः (२)

देवि! स्तुति-व्यतिकरे कृतबुद्धयस्ते

वाचस्पति-प्रभृतयोपि जडी-भवन्ति।

तस्मात्-निसर्ग-जडिमा कतमो-हम्-अत्र

स्तोत्रं तव त्रिपुर-तापन-पत्नि! कर्तुम् (३)

माता तथापिल भवतीं भव-तीव्र-ताप

विच्छित्तये स्तुति-महार्णव-कर्णधारः

स्तोतुं भवानि ! स-भवत् चरणार-विन्द

भक्ति-ग्रहः किम्-अपि मां मुखरी करोति (४)

सूते जगन्ति भवति, भवती बिभर्ति

जागर्ति तत्-क्षयकृते भवती भवानि।

मोहं भिनत्ति भवती भवती रुणद्धि

लीलायितं जयति चित्रम्-इदं भवत्याः (५)

यस्मिन् मनाक-अपि नवाम्बुज-पत्र गौरि!

गौरि! प्रसाद-मधुरां दृशम्-आदधासि।

तस्मिन्-निरन्तरम्-अनंग-शराव-कीर्ण

सीमन्तिनी नयन सन्ततयः पतन्ति (६)

पृथ्वीभुजो-प्युदयन, प्रवरस्य तस्य
विद्याधर-प्रणति-चुम्बित-पाद-पीठः
यच्चक्र-वर्ति-पदवी-प्रणयः स एष
त्वत्-पाद पंकजरजः, कणजः प्रसादः (७)

कल्पद्रुम-प्रसव-कल्पित-चित्रपूजाम्
उद्दीपित-प्रियतमा-मदरक्त-गीतिम्।
नित्यं भवानि ! भवतीम्-उपवीणयन्ति
विद्याधराः कनक-शैल-गुहा-गृहेषु (८)

लक्ष्मी-वशी-करण-कर्मणि कामिनीनाम्
आकर्षण-व्यतिकरेषु च सिद्धमन्त्रः।
नीरन्ध्र-मोह-तिमिर-च्छिदुर-प्रदीपो
देवि ! त्वत्-अंध्रि-जनितो जयति प्रसादः (९)

देवि ! त्वत्-अंध्रि-नख-रत्न-भुवो मयूरवाः
प्रत्यग्र-मौक्तिक-रुचो मुदम्-उद्वहन्ति।
सेवा-नति-व्यतिकरे-सुर-सुन्दरीणां
सीमन्त-सीम्नि कुसुमस्तवकायितं यैः (१०)

मूर्ध्नि स्फुरत्-तुहिन-दीधिति-दीप्ति-दीप्तं
मध्ये ललाटम्-अमरायुध-रस्मि चित्रम्।
हृत्-चक्र-चुम्बि-हुत-भुक्-कणि-कानुरूपं
ज्योतिर्यत्-एतत्-इदं अम्ब ! तव स्वरूपम् (११)

रूपं तव स्फुरित-चन्द्र-मरीचि-गौरम्
आलोकते शिरसि वाक्-अधि-दैवतं यः।
निःसीम-सूक्ति-रचना-मृत-निर्भरस्य
तस्य प्रसाद-मधुराः प्रसरन्ति वाचः (१२)

सिन्दूर-पांसु-पटल-छुरिताम्-इव-द्यां
त्वत्-तेजसा जतुरस-स्नपिताम्-इवोर्वीम्
यः पश्यति क्षणमपि त्रिपुरे ! विहाय
व्रीडां मृडानि ! सुदृशस्तम्-अनु-द्रवन्ति (१३)

मातः-मुहूर्तम्-अपि-यः स्मरति स्वरूपं
लाक्षा-रस-प्रसर-तन्तुनिभं भवत्याः।
ध्यायन्त्य-नन्य-मनस-स्तं-अनंग-तप्ताः
प्रद्युम्न-सीम्नि सुभगत्व-गुणं तरुण्यः (१४)

योयं चकास्ति गगनार्णव-रत्नम्-इन्दुः
योयं सुरा-सुर-गुरु-पुरुषः पुराणः।
यत् वामम्-अर्धम्- अन्धक-सूदनस्य
देवि ! त्वमेव तत्-इति प्रतिपादयन्ति (१५)

इच्छानुरूपम्-अनुरूप-गुण-प्रकर्ष
संकर्षिणि ! त्वम्-अनुसृत्य-यदा-बिभर्षि।
जायेत स त्रिभुव-नैक गुरु-स्तदानीं
देवः शिवोपि भुवन-त्रय-सूत्रधारः (१६)

रुद्राणि ! विद्रुम-मयीं, प्रतिमाम्-इव-त्वां
ये चिन्तयन्त्य-रुण-कान्तिम्-अनन्यरूपाम्।
तानेत्य-पक्ष्मलदृशः प्रसभं भजन्ते
कण्ठावसक्त-मृदु-बाहु-लता-स्तरुण्यः (१७)

त्वत्-रूपम्-उल्लसित-दाडिम-पुष्परक्तम्
उत्-भावयेत्-मदनदैवतम्-अक्षरं यः।
तं रूप-हीनम्-अपि, मन्मथ-निर्विशेषम्
आलोकयन्ति-उरु-नितम्बभरा-स्तरुण्यः (१८)

ध्यातासि हैमवति ! येन हिमांशु-रश्मि
माला-मल-द्युतिर्-अकल्मष-मानसेन।
तस्या-विलम्बम्-अनवद्यम्-अनल्प-कल्पम्
अल्पैर्दिनैः सृजसि सुन्दरि! वाक्-विलासम् (१९)

आधार-मारुत-निरोध-वशेन येषां
सिन्दूर-रंजित-सरोज-गुणानु-कारि।
तीव्रं हृदि स्फुरति देवि! वपु-स्तवदीयं
ध्यायन्ति तान्-इह समीहित-सिद्ध-साध्याः (२०)

त्वाम्-ऐन्दवीम्-इव कलाम्-अनुभाल-देशम्
उत्-भासिता-म्बर-तलाम्-अवलोकयन्तः।
सद्यो भवानि ! सुधियः कवयो भवन्ति।
त्वं भावनाहित-धियां कुल-काम-धेनुः (२१)

त्वां व्यापिनीति समना इति कुण्डलीति
त्वां कामिनीति कमलेति कलावतीति।
त्वां मालिनीति ललितेत्य-पराजितेति
देवि ! स्तुवन्ति विजयेति जये-त्युमेति (२२)

ये चिन्तयन्त्य-रुण-मण्डल-मध्य-वर्ति

रूपं तवाम्ब ! नव-यावक-पंक-पिंगम्।

तेषां सदैव-कुसुमायुध-बाण-भिन्न

वक्षःस्थला-मृगदृशो-वशगा भवन्ति (२३)

उत्तप्त-हेम-रुचिर परे ! पुनीहि

चेत-श्चिरन्तनं-अघौघवनं लुनीहि।

कारागृहे निगड-बन्धन-पीडितस्य

त्वत्-संस्मृतौ झट्-इति मे निगडा-स्त्रुट्यन्तु (२४)

शर्वाणि ! सर्वजन-वन्दित-पाद-पद्मे !

पद्मच्छद-च्छवि-विडम्बित-नेत्र-लक्ष्मि !

निष्पाप-मूर्ति-जन-मानस-राज हंसि !

हंसि त्वम्-आपदम्-अनेक विधां जनस्य (२५)

त्वत्-पाद-पंकज-रजः प्रणिपादत-पूतैः

पुण्यैर्-अनल्प-मतिभिः-कृतिभिः कवीन्द्रैः।

क्षीर-क्षपाकर-दुकूल-हिमाव-दाता

कर्-प्यवापि भुव-त्रितयेपि कीर्तिः (२६)

त्वत्-रूपैक-निरूपण-प्रणयिता बन्धो दृशो-स्त्वत्-गुण
ग्रामा-कर्णन-रागिता श्रवणयो-स्त्वत्-संस्मृति-श्चेतसि।
त्वत्-पादार्चन-चातुरी करयुगे, त्वत् कीर्तनं-वाचि मे
कुत्रापि त्वत्-उपासन-व्यसनिता, मे देवि! मा शाम्यतु (२७)

उद्दाम-काम-परमार्थ-सरोज-षण्ड-
चण्ड-द्युति-द्युतिम्-उपासित-षट्-प्रकारम्।
मोह-द्विपेन्द्र-कदनोद्यत-बोध-सिंह-
लीला-गुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि (२८)

गणेश-वटुक-स्तुता-रति-सहाय कामान्विता
स्मरारि-वर-विष्टरा, कुसुमबाण-बाणै-र्युता।
अनंग-कुसुमादिभिः परिवृता च सिद्धैः त्रिभिः
कदम्ब-वन-मध्यगा, त्रिपुर-सुन्दरी पातु नः (२९)

यस्तोत्रम्-एतत्-अनुवासरम्-ईश्वरायाः
श्रेयस्करं पठति वा यदि वा शृणोति।
तस्येप्सितं फलति राजभिर्-ईड्यतेऽसौ
जायेत स प्रियतमो हरिणेक्षणानाम् (३०)

बह्मोन्द्र-रुद्र-हरि-चन्द्र-सहस्त्र-रश्मि-

स्कन्द-द्विपानन-हुताशन-वन्दितायै।

वागीश्वरि ! त्रिभुवनेश्वरि ! विश्वमातः

अन्त-र्बहिश्च कृत-संस्थितये नमस्ते (३१)

अथ पञ्चस्तव्यां घटस्तवः तृतीयः

देवि ! त्र्यम्बक-पत्नि! पार्वति! सति! त्रैलोक्यमातः! शिवे!
शर्वाणि! त्रिपुरे! मृडानि! वरदे! रुद्राणि! कात्यायिनि!
भीमे! भैरवि! चण्डि! शर्वरि! कले! कालक्षये! शूलिनि!
त्वत्-पाद-प्रणतान्-अनन्यमनसः पर्याकुलान् पाहि-नः (१)

उन्मत्ता इव, सग्रहा इव, विषव्यासक्त-मूर्च्छा इव
प्राप्त-प्रौढमदा इवाति विरह-ग्रस्ता-इवार्ता-इव
ये ध्यायन्ति हि शैलराज-तनयां-धन्यास्त-एकाग्रत-
स्त्यक्तोपाधि-विवृद्ध-रागमनसो ध्यायन्ति वामभ्रुवः (२)

देवि ! त्वां सकृत्-एव यः प्रणमति, क्षोणीभृतच-स्तंनम-
न्त्याजन्म-स्फुरत्-अंघ्रि-पीठ-विलुठत्-कोटीर-कोटिच्छटाः।
यस्त्वाम्-अर्चति सोऽर्च्यते सुरगणै-र्यः स्तौति स स्तूयते
यस्त्वां ध्यायति तं स्मरार्ति-विधुरा ध्यायन्ति वामभ्रुवः (३)

ध्यायन्ति ये क्षणमपि त्रिपुरे ! हृदि त्वां
लावण्य-यौवन-धनैर्-अपि विप्रयुक्ताः।
ते विस्फुरन्ति ललितायत-लोचनानां
चित्तैक-भित्ति-लिखित-प्रतिमाः पुमांसः (४)

एतं किं नु दृशा पिवाम्युत, विशाम्यस्यांगम्-अंगैर्निजैः
किं वामुं निग-लाम्यनेन सहसा किं वैकताम्-आश्रये।
तस्येत्थं विवशो विकल्प-घटना कूतेन योषित्-जनः
किं तत्-यत्-न करोति देवि! हृदये यस्य त्वम्-आवर्तसे (५)

विश्व-व्यापिनि यत्-वत्-ईश्वर इति, स्थाणौ-अनन्याश्रयः
शब्दः शक्तिर्-इति त्रिलोकजननि ! त्वय्येव तथ्य-स्थितिः
इत्थं सत्यपि शक्नुवन्ति यत्-इमाः क्षुद्रा रुजो बाधितुं
त्वत्-भक्तान्-अपि न क्षिणोषि च-रुषा, तत्-देवि! चित्रं महत्(६)

इन्दो-र्मध्यगतां मृगांक-सदृशच्छायां मनो-हारिणीं
पाण्डूत्फुल-सरोरुहासन-गतां, स्निग्ध-प्रदीपच्छविम्।
वर्षन्तीम्-अमृतं भवानि ! भवतीं ध्यायन्ति ये देहिनः
ते निर्मुक्त-रुजो भवन्ति विपदः प्रोज्झन्ति तान्-दूरतः (७)

पूर्णेन्दोः शकलैर्-इवा-तिबहलैः, पीयूष पूरैर्-इव
क्षीराब्धे-र्लहरी-भरैर् इव, सुधा-पंकस्य पिण्डैर्-इव।
प्रालेयैर्-इव निर्मितं तव वपुर्ध्यायन्ति ये श्रद्धया
चित्तान्तर्-निहतार्ति-ताप-विपदस्ते सम्पदं बिभ्रति (८)

ये संस्मरन्ति तरलां सहसोल्लसन्तीं
त्वां ग्रन्थि-पञ्चकभिदं तरुणार्क-शोणाम्।
रागार्णवे बहलरागिणि मज्जयन्तीं
कृत्स्नं जगत्-दधति चेतसि तान्-मृगाक्ष्यः (६)

लाक्षारस-स्नपित-पंकज-तन्तु-तन्वीम्-
अन्तः स्मरत्यनुदिनं भवतीं भवानि।
यस्तं स्मर-प्रतिमन्-अप्रतिम-स्वरूपा
नेत्रोत्पलै-र्मगदृशो भृशम्-अर्चयन्ति (१०)

स्तुमस्त्वां वाचम्-अव्यक्तां
हिम-कुन्देन्दु-रोचिषम्।
कदम्ब-मालां विभ्राणाम्
आपाद-तल-लम्बिनीम् (११)

मूर्ध्नीन्दोः सित-पंकजा-सनगतां, प्रालेय-पाण्डु-त्विषं
वर्षन्तीम्-अमृतं सरोरुहभुवो, वक्त्रेपि रन्ध्रेपि च।
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता, चाति-प्रसन्नापि च
त्वाम्-एव स्मरतां स्मरारि-दयिते! वाक् सर्वतो वल्गति (१२)

ददातीष्टान्-भोगन्-क्षपयति रिपून्-हन्ति-विपदो
दहत्याधीन्-व्याधीन्-शमयति सुखानि प्रतनुते।
हठात्-अन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्ट-विरहं
सकृत्-ध्याता देवी किम्-इव निर्-अवद्यं न कुरुते (१३)

यस्त्वां ध्यायति वेत्ति विन्दति जप-त्यालोकते चिन्तय
त्यन्वेति प्रतिपद्यते कलयति स्तौत्या-श्रय-त्यर्चति।
यश्च त्र्यम्बक-वल्लभे! तवगुणान्-आकर्ण-य-त्यादरात्
तस्य श्रीर्न-गृहात्-अपैति विजयस्तस्याग्रतो धावति (१४)

किं किं दुःखं दनुजदलिनि! क्षीयते न स्मृतायां
का का कीर्तिः कुलकमलिनि! ख्याप्यते न स्तुतायाम्।
का का सिद्धिः सुरवर-नुते! प्रप्यते नार्चितायां
कं कं योगं त्वयि न चिन्वते, चित्तम्-आलम्बितायाम् (१५)

ये देवि! दुर्धर-कृतान्त-मुखान्तरस्था
ये कालि! कालघन-पाश-नितान्त बद्धाः
ये चण्डि! चण्ड-गुरु-कल्मष-सिन्धुमग्ना
स्तान् पासि मोचयसि तारयसि-स्मृतैव (१६)

लक्ष्मी-वशीकरण-चूर्ण-सदोदराणि
त्वत्-पाद-पंकजरजांसि चिरं जयन्ति।
यानि प्रणाम-मिलितानि नृनां ललाटे
लुम्पंन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि (१७)

रे मूढः! किम्-अयं वृथैव तपसा, कायः परिक्लिश्यते
यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः किम्-इतरे रिक्ती क्रियन्ते गृहाः
भक्तिश्चेत्-अविनाशिनी भगवती पादद्वयी सेव्यताम्।
उन्निद्राम्बु-रुहात-पत्रसुभगा, लक्ष्मीः पुरोधावति (१८)

याचे न कंच न कंचन वञ्चयामि
सेवे न कंचन निरस्त-समस्त-दैन्यः।
श्लक्ष्णं वसे मधुरम्-अद्मि भजे वरस्त्री
देवी हृदि स्फुरति में कुलकाम-धेनुः (१९)

शब्द-ब्रह्म-मयि! स्वच्छे! देवि! त्रिपुर-सुन्दरि!
यथा-शक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरि (२०)

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः
अवस्था शम्भवी मेस्तु प्रसन्नोस्तु गुरुः सदा (२१)

दर्शनात् पापशमनी जपात्-मृत्युविनाशिनी
पूजिता दुःख-दौर्भाग्य हरा त्रिपुर-सुन्दरी (२२)

नमामि यामिनीनाथ-लेखा-लङ्कृत-कुन्तलाम्
भवानीं भवसन्ताप-निर्वापण-सुधानदीम् (२३)

मन्त्रहीनं क्रिया हीनं विधिहीनं च यत्‌गतम्।
त्वया तत्-क्षम्यतां देवि! कृपया परमेश्वरि (२४)॥

अथ पञ्चस्तव्यां–अम्बस्तवः चतुर्थः

यामा-मनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीं
विद्येति यां श्रुतिरहस्यविदो वदन्ति
ताम्-अर्ध-पल्लवित-शंकर-रूप-मुद्रां
देवीम्-अनन्य-शरणः शरणं प्रपद्ये (१)

अम्ब! स्तवेषु तव तावत्-अकर्तृकाणि
कुण्ठी भवन्ति वचसाम्-अपि गुम्फनानि।
डिम्बस्य में स्तुतिर्-असौ-असमञ्जसापि
वात्सल्य-निघ्न-हृदयां-भवतीं धिनोति (२)

व्योमेति बिन्दुर्-इति नाद इतीन्दुलेखा
रूपेति वाक्-भवतनूः-इति मातृकेति।
निष्यन्दमान-सुखबोध-सुधास्वरूपा
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम् (३)

आविर्भवत्-पुलक-सन्ततिभिः शरीरैः
निष्यन्दमान-सलिलैः-नयनैश्च नित्यम्।
वाग्भिश्च गद्‌गद-पदाभिर्-उपासते ये
पादौ तवाम्ब! हृदयेषु त एव धन्याः (४)

वक्त्रं यत्-उद्यतम्-अभिष्टुतये भवत्या-
स्तुभ्यं नमो यत्-अपि देवि! शिरः करोति।
चितश्च यत्-त्वयि परायणम्-अम्ब तानि
कस्यापि कैर्-अपि भवन्ति तपो-विशेषैः (५)

मूलाल-वाल-कुहरात्-उदिता भवानि
निर्भिद्य-षट्-सरसिजानि तडित्-लतेव।
भूयोपि तत्र विशसि ध्रुव-मण्डलेन्दु
निष्यन्दमान-परमामृत-तोय रूपा (६)

दग्धं यदा मदनम्-एकम्-अनेकधा-ते
मुग्धः कटाक्षविधिर-अंकुरयां-चकार।
धत्ते तदा-प्रभृति देवि! ललाट नेत्रं
सत्यं ह्रियेव मुकलीं कृतम्-इन्दमौलिः (७)

अज्ञात-सम्भवम्-अनाकलिता-न्ववायं
भिक्षुं कपालिनम्-अवाससम्-अद्वितीयम्
पूर्वं-करग्रहण-मंगलतो भवत्याः
शम्भुं क एव बुबुधे गिरि-राज-कन्ये (८)

चरमाम्बरं च शव-भस्म-विलेपनं च
भिक्षाटनं च नटनं च परेत-भूमौ।
वेताल-संहति-परिग्रहता च शम्भोः
शोभां बिभर्ति गिरिजे! तव साहचर्यात् (९)

कल्पोप-संहरण कलेषिु पाण्डितानि
चण्डानि खण्डपरशोर्-अपि ताण्डवानि।
आलोकनेन तव कोमलितानि मातर्!
लास्यात्मना पिरणमन्ति जगत्-विभूत्यै (१०)

ज्तोर्-अपश्चिमतनोः सति कर्मसाम्ये
निशेष-पाशपटल-च्छिदुरा-निमेषात्
कल्याणि! दैशिक-कटाक्ष-समाश्रयेण
कारुण्यतो भवसि शाम्भव-वेददीक्षा (११)

मुक्ता विभूषणवती नव-विद्रुमाभा
यत्-चेतसि स्फुरसि तारकितेव सन्ध्या।
एकः स एव भुवनत्रय-सुन्दरीणां
कन्दर्पतां व्रजति पञ्चशरीं विनापि (१२)

ये भावयन्त्य-मृत-वाहिभिर्-अंशुजालैः।
आप्यायमान-भुवनाम्-अमृतेश्वरीं त्वाम्।
ते लंघयन्ति ननु मातर्- अलंघनीयां
ब्रह्मादिभिः सुर-वैरर्-अपि कालकक्ष्याम् (१३)

बर्हावतंस-युत-'र-केशपाशां
गुञ्जावली-कृत-घनस्तन-हार-शोभाम्
श्यामां प्रवाल वदनां सुकुमार-हस्तां
त्वाम्-एव नौमि शवरीं शवरस्य जायाम् (१५)

अर्धेन किं नवलता ललितेन मुग्धे!
क्रीतं विभोः परुषं:अर्ध इदं-त्वयेति।
आलीजनस्य परिहास-वचांसि मन्ये
मन्द-स्मितेन तव देवि! जडी भवन्ति (१६)

ब्रह्माण्ड बुद्‌बुद-कदम्बक संकुलोयं
मायोदधि-विविध-दुःख तरंगमालः।
आश्चर्यम्-अम्ब! झट्-इति प्रलयं प्रयाति,
त्वत्-ध्यान-सन्तति-महा-व डवा-मुखाग्नौ (१७)

दाक्षायणीति कुटलेति गुहारणीति
कात्यायीनति कमलेति कलावतीति
एका सती भगवती परमार्थतोपि
संदृश्यसे बहु विधा ननु नर्तकीव(१८)

आनन्द-लक्ष्णम्-अनात नाम्नि देशे
नादात्मना परिणतं तव रूपम्-ईशे।
प्रत्यङ्-मुखेन मनसा परिचीयमानं
शंसन्ति-नेत्र-सलिलैः पुलकैश्च धन्याः (१९)

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं
त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलं त्वम्।
त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वम्-ऊष्मा
निःसारम्-एव निखिलं त्वत् ऋते यदि स्यात् (२०)

ज्योतींषि यत्-दिवि चरन्ति यत्-अन्तरिक्षं
सूते पयांसि यत्-अहिं-र्धरणीं च धत्ते।
यत्-वाति-वायुर्-अनलो, यत्-उदर्चिर्-आस्ते
तत्-सर्वम्-अम्ब! तव केवलम्-आज्ञ-यैव (२१)

संकोचम्-इच्छासि, यदा गिरिजे! तदानीं
वाक्-तर्कयो-स्त्वम्-असि भूमिः अनाम-रूपा।
यद्धा विकासम्-उपयासि यदा तदानीं
त्वत् नाम रूपगणनाः सुकरी भवन्ति (२२)

भोगाय देवि भवती कृतिनः प्राण्य
भ्रूकिंकरी-कृत-सरोजगृहा-सहस्राः
चिन्तामणि-प्रचय-कल्पित-केलि-शैले
कल्पद्रुमोपवन एव चिरं रमन्ते (२३)

हन्तु त्वमेव भवसि-त्वत्-0अधीनम्-ईशे
संसार-तापम्-अखिलं दयया पशूनाम्।
वैकर्तनी-किरण-संहतिर्-एव-शक्ता
धर्म न्जिं शमयितुं निजयैव दृष्ट्या (२४)

शक्तिः शरीरं-अधिदैवतं-अन्तरात्मा
ज्ञानं क्रिया करणं-आसन-जालं-इच्छा।
ऐश्वर्य-आयतनं-आवरणानि च त्वं
किं तत् न यत् भवसि देवि शशांक-मौलेः (२५)

भूमौ निवृत्तिर्-उदिता-पयसि-प्रतिष्ठा
विद्यानले मरुति शान्तिर्-अतीत-शान्तिः।
व्योम्नीति याः किलकलाः कलयन्ति विश्वं
तासां विदूर-तरम्-अम्ब! पदं त्वदीयम् (२६)

यावत्पदं पद-सरोजयुगं त्वदीयं
नांगी करोति हृदयेषु जगत्-शरण्ये।
तावत्-विकल्प-जटिलाः कुटिल-प्रकाराः
तर्क-ग्रहाः समयिनां प्रलयं न यान्ति (२७)

यत्-देवयान-पितृयान-विहारम्-एके
कृत्वा मनः करणमण्डल-सार्वभौमम्।
याने निवेश्य तव कारण-पञ्चकस्य
पर्वाणि पार्वति नयन्ति निजासनत्वम् (२८)

स्थूलासु मूर्तिषु महीप्रमुखासु मूर्तेः
कस्याश्चनापि तव वैभवम्-अम्ब यस्याः।
पत्या गिराम्-अपि न शक्यत एव वक्तुं
सा-सि स्तुता किल मयेति तितिक्षितव्यम् (२९)

कालाग्नि कोटिरुचिम्-अम्ब षट्-अध्वशुद्धौ
आप्लावनेषु भवतीम्-अमृतौघ-वृष्टिम्।
श्यामां घनस्तन-तटां सकली कृतौ च
ध्यायन्त एवलजगतां गुर वो भवन्ति (३०)

विद्यां परां कतिचित्-अम्बरम्-अम्ब के चित्
आनन्द एवं कतिचित्, कति चित् च मायाम्।
त्वां विश्वम्-आहुः-अपरे वयम्-आमनाम
साक्षात्-अपार-करुणां, गुरुमूर्तिम्-एव (३१)

कुवलय-दलनीलं ॑र-स्निग्ध-केशं
प्रथुतर-कुचभारा-क्रान्त-कान्तावलग्नम्।
किम्-इह बहुभिर्-उक्तैः-त्वत् स्वरूपं परं नः
सकल-भुवन-मातः-सन्ततं सन्निधत्ताम् (३२)

अथ पञ्चस्तव्यां–सकलजननी स्तवः पञ्चमः

अजानन्तो यान्ति, क्षयम्-अवशम्-अन्योन्य-कलहैः
अमी-मायाग्रन्थौ, तव परिलुठन्तः समयिनः।
जगत्-मातरल्-जन्म, ज्वर-भय-तमः-कौमुदि! वयं
नमस्ते कुर्वाणाः शरणम्-उपयामो भगवतीम् (१)

वचस्तर्कागम्य-स्वरस-परमानन्द-विभव
प्रबोधाकाराय-द्युति-दलित-नीलोत्पलरुचे!
शिवस्याराध्याय स्तन भर-विनम्राय सततं
नमो यस्मै कस्मैचन भवतु मुग्धाय महसे (२)

लुठत्-गुञ्जाहार-स्तनभर-नमत्-मध्य-लतिकां
उदञ्चत्-घार्माम्भः कणगुणित-नलोत्पलरुचम्।
शिवं पार्थत्राण-प्रवण-मृगयाकार-गुणितं

शिवाम्-अन्वक्-यान्तीं शवरं-अहं-अन्वेमि-शवरीम् (३)
मिथः केशाकेशि-प्रधन-निधनाः-तर्क घटना
बहु-श्रद्धा-भक्ति-प्रणय-विषयाः-चाप्त-विधयः।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव-गिरिसुते! देहि शरणं
निरालम्बं चेतः परिलुठति पारिप्लवम्-इदम् (४)

शुनां वा वह्ने-र्वा-खगपरिषदो वा यत्-अशनं
कदा केन ेति े चित्-अपि न कश्चित्-कलयति।
अमुष्मिन्-विश्वासं विजहिहि ममाह्लानय वपुषि
प्रपद्येथा-श्चेतः सकल-जननीं-एव शरणम् (५)

आद्यन्ताभेद-प्रणयरसिकापि प्रणयिनी
शिवस्यासीः-यत्-त्वं, परिणय-विधौ देवि! गृहिणी।
सवित्री भूतानाम्-अपि यत्-उदभूः शैलतनया
तत्-एतत्-संसार-प्रणयन-महानाटक-सुखम् (६)

ब्रुवन्त्येके तत्त्वं भगवति! सत्-अन्ये विदुर्-असत्
परे मातः! प्राहुः तव सत्-असत्-अन्ये सुकवयः।
परे नैतत्-सर्वं सम्-अभिदधते दवि! सुधियः
तत्-एतत्-त्वत्-माया, विलसितम्-अशेषं ननु शिवे (७)

तडत्-कोटि-ज्योतिः, द्युति-दलित षड्ग्रथि-गहनं
प्रविष्टं स्वाधारं पुनर्-अपि सुधावृष्टि-वपुषा।
किम्-अप्यष्टा-त्रिंशत्-किरण-सकली भूतं-अनिशं
भजे धाम स्यामं, कुचभरनतं बर्बर-कचम् (८)

चतुष्पत्रान्तः षड्-दल-भग-पुटान्त-स्त्रिवलय
स्फुरत्-विद्यत्-वह्नि, द्युमणि-नियुताभ-द्युतियुते!
षट्-अस्त्रं भित्त्वादौ, दशदलम्-अथ द्वादश दलं
कलाश्रं च द्वयश्रं गतवति! नमस्ते गिरिसुते! (९)

कुलं केचित्-प्राहु-र्वपुर्-अकुलं-अन्ये-तव-बुधाः
परे तत्-सम्भेदं सम्-अभिदधते कौलं-अपरे।
चतुर्णां-अप्येषां-उपरि-किम्-अपि-प्राहुर्-अपरे
महामाये! तत्त्वं तव कथम्-अमी-निश्चिनुमहे (१०)

षड्-अध्वारण्यानीं प्रलय-रविकोटि-प्रतिरुचा
रुचा भस्मीकृत्य स्वपद-कमल-प्रह्व-शिरसाम्।
वितन्वानः शैवं किमपि वपुः-इन्दीवर-रुचिः
कुचाभ्याम्-आनम्रः शिवपुरुषाकारो विजयते (११)

प्रकाशानन्दभ्याम्-अविदितचरीं मध्यपदवीं
प्रतिश्यैतत्-द्वन्द्वं, रविशाशि समाख्यं कवलयन्।
प्रविश्योर्ध्वं ादं, लय-दहन-भस्मी-कृतकुलः
प्रसादात्-ते-जन्तुः, शिवम्-अकुलम-अम्ब! प्रविशति (१२)

प्रियंगु-स्यामांगीम्-अरुणतरवासः किसलयां
समुन्मीलन्-मुक्ताफल-बहुल-नेपथ्य-कुसमाम्.
स्तन-द्वन्द्व-स्फार-स्तवक-नमितां कल्पलतिकां
सकृत्-ध्यायन्त-स्त्वां दधति शिवचिन्ता-मणिपदम् (१३)

षड्-आधारा-वर्तैः, अपरिमित-मन्त्रोर्मि-पटलैः
चलन्-मुद्राफेनैः बहुविध-लसत्-दैवत-झषैः
क्रम-स्त्रोतोभिः-त्वं वहसि, परनादामृत-नदीं
भवानि! प्रत्यग्र शिव-चित्-अमृताब्धि-प्रणयिनी (१४)

महीपाथोवह्नि-श्वसन-वियत्-आत्मेन्दुरविभिः
वपुभिः-ग्रस्तांशैः-अपि, तव कियान्-अम्ब! महिमा।
अमून्या-लोक्यन्ते भगवति! न कुत्राप्यनु-तराम्-
अवस्थां प्राप्तानि त्वयि-तु, परम-व्योम-वपुषि (१५)

मनुष्याः तिर्यञ्चो मरुत इति लोकत्रयम्-इदं
भवाम्भोधौ मग्नं त्रिगुण-लहरीकोटि-लुठितम्।
कटाक्षः-चेत्-अत्र`चन तव मातः! करुणया
शरीरी सद्योयं व्रजति परमानन्द-तनुताम् (१६)

कलां प्रज्ञां-आद्यां, समयं-अनुभूतिं समरसां
गुरुं पारप्पर्यं विनयं उपदेशं शिवकथाम्।
प्रमाणं निर्वाणं परमं-अतिभूतिं-परगुहां
विधिं विद्यां-आहुः सकल-जननीं-एव मुनयः (१७)

प्रलीने शब्दौघे तत्-अनु-विरते-बिन्दुविभवे
ततस्तत्त्वे चाष्टाध्वनिभिः-अनुपाधिनि-उपरते
श्रिते शक्ते पर्वण्यनु-कलित-चिन्मात्र-गहनां
स्वसंवितितिं योगी रसयति शिवाख्यां परतनुम् (१८)

परानन्दाकारां निरवधि, शिवैश्र्य-वपुषं
निराकार-ज्ञान, प्रकृतिं-अनवच्छिन्न-करुणाम्।
सवित्रीं भूतानां निर्-अतिशय-धामास्पद-पदां
भवो वा मोक्षो वा भवतु भवतीं-एवं भजताम् (१९)

जगत्-काये कृत्वा-तं-अपि हृदये तत् च पुरुषे
पुमांसं बिन्दुस्थं तं-अपि परनादाख्य-गहने।
तत्-एतत्-ज्ञानाख्ये, तत्-अपि परमानन्द-विभवे
महा-व्योमाकारे त्वत्-अनुभव-शीलो विजयते (२०)

विधे! विद्ये! वेद्ये! विविध समये! वेद! जननि!
विचित्रे! विश्वाद्ये! विनय-सुलभे! वेद गुलके!
शिवाज्ञे! शीलस्थे! शिवपदवदान्ये! शिवनिधे!
शिवे! मातर्-मह्यं त्वयि वितर भक्तिं निरुपमाम् (२१)

विधेर्मुण्डं हृत्वा यत्-अकुरुत पात्रं करतले
हरिं शूलप्रोतं यत्-अगमयत्-अंसाभरणताम्।
अलंचक्रे कण्ठ यत् अपि गरलेनाम्ब! गिरिशः
शिवस्थायाः शक्तिः-तत्-इदं-अखिलं = ते विलसितम् (२२)

विरिंच्याख्या मातः! सृजसि हरिसंज्ञा-त्वं-अवसि
त्रिलोकी रुद्राख्या रसि विदधासी-श्वरदशाम्।
भवन्दी सादाख्या शिवयसि च पाशौघ-दलिनी
त्वं-एवैकाऽनेका भवसि, कृतभेदैः-गिरिसुते (२३)

मुनीनां चेतोभिः प्रमृदित-कषायैः-अपि मनाक्
अशक्ये संस्प्रष्टुं चकित-चकितैः-अम्ब! सततम्।
श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृति-कठिनाः कोमलतरे
कथं ते विन्दन्ते पद किसलये पार्वति! पदम् (२४)

तड़ित्-वल्लीं नित्यां-अमृत-स्तरितं पार-रहितां
मलोत्तीर्णाँ ज्योत्सनां प्रकृतिम्-अगुण-ग्रन्थि-गहनाम्।
गिरां दूरां विद्यां-अवनत-कुचां विश्व-जननीं
अपर्यन्तां लक्ष्मी-अभिदधति सन्तो-भगवतीम् (२५)

शरीरं क्षित्यम्भः प्रभृति-रचितं केवलं-इदं
सुखं दुःखं चायं कलयति पुमान्-चेतन इति।
स्फुटं जानानोपि प्रभवति न देही रहयितुं
शरीराहंकारं तव समय बाह्यः-गिरिसुते! (२६)

पिता माता भ्रता सुहृत्-अनुचरः सद्म गृहिणी
वपुः पुत्रो मित्रं धनमपि यदा-मां विजहति।
तदा में भिन्दाना सपदि भय-मोहान्ध-तमसं
महाज्योत्सने! मात-र्भवकरुणया सन्निधिकरी (२७)

सुता दक्षस्यादौ किल सकलमातः-त्वम्-उत्-अभूः
सदोषं तं हित्वा तत्-अनु गिरिराजस्य तनया।
अनाद्यन्ता शम्भोः-अपृथक्-अपि शक्ति-भगवती
विवाहात्-जायसी-त्यहह चरितं वेत्ति तव कः (२८)

कणाः-त्वत्-दीप्तीनां रवि-शशि-कृशानु-प्रभृतयः
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतं-आनन्द-कणिका।
शिवादि-क्षित्यन्तं, त्रिवलय-तनोः सर्वमुदरे
तवस्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदिचित्रं भगवति (२९)

त्वया यो जानीते रचयति भवत्यैव सततं
त्वयैवे-च्छत्यम्ब! त्वं-असि निखिलाः यस्य तनवः।
गतः साम्यं शम्भुः वहति परमं व्योम बवती
तथाप्येवं-हित्वा, विहरति शिवस्येति-किं इदम् (३०)

पुरः पश्चात्-अन्त-र्बहिर्-अपरिमेयं परिमितं
परं स्थूलं सूक्ष्मं संकुलं-अकुलं-गुह्यं-अगुहम्।
दवीयो नेदीयः सत्-असत्- इति-विश्वं भगवतीं
सदा पश्यन्त्याज्ञां वहसि भवन-क्षोभ-जननीम् (३१)

मयूरवाः पूष्णीव ज्वलन इव तत्-दीप्ति-कणिकाः
पयोधौ-कल्लोल-प्रतिहत-महिम्नीव पृषतः।
उदेत्योदेत्याम्ब, त्वयि सह निजैः तात्त्विक-कुलैः
भजन्ते तत्त्वौघाः प्रशमम्-अनुकल्पं परवशाः (३२)

विरिंच्याख्या मातः! सृजसि हरिसंज्ञा-त्वं-अवसि
त्रिलोकी रुद्राख्या रसि विदधासी-श्वरदशाम्।
भवन्दी सादाख्या शिवयसि च पाशौघ-दलिनी
त्वं-एवैकाऽनेका भवसि, कृतभेदैः-गिरिसुते (२३)

मुनीनां चेतोभिः प्रमृदित-कषायैः-अपि मनाक्
अशक्ये संस्प्रष्टुं चकित-चकितैः-अम्ब! सततम्।
श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृति-कठिनाः कोमलतरे
कथं ते विन्दन्ते पद किसलये पार्वति! पदम् (२४)

तड़ित्-वल्लीं नित्यां-अमृत-सरितं पार-रहितां
मलोत्तीर्णाँ ज्योत्सनां प्रकृतिम्-अगुण-ग्रन्थि-गहनाम्।
गिरां दूरां विद्यां-अवनत-कुचां विश्व-जननीं
अपर्यन्तां लक्ष्मी-अभिदधति सन्तो-भगवतीम् (२५)

शरीरं क्षित्यम्भः प्रभृति-रचितं केवलं-इदं
सुखं दुःखं चायं कलयति पुमान्-चेतन इति।
स्फुटं जानानोपि प्रभवति न देही रहयितुं
शरीराहंकारं तव समय बाह्यः-गिरिसुते! (२६)

पिता माता भ्रता सुहृत्-अनुचरः सद्म गृहिणी
वपुः पुत्रो मित्रं धनमपि यदा-मां विजहति।
तदा में भिन्दाना सपदि भय-मोहान्ध-तमसं
महाज्योत्सने! मात-र्भवकरुणया सन्निधिकरी (२७)

सुता दक्षस्यादौ किल सकलमातः-त्वम्-उत्-अभूः
सदोषं तं हित्वा तत्-अनु गिरिराजस्य तनया।
अनाद्यन्ता शम्भोः-अपृथक्-अपि शक्ति-भगवती
विवाहात्-जायसी-त्यहह चरितं वेत्ति तव कः (२८)

कणाः-त्वत्-दीप्तीनां रवि-शशि-कृशानु-प्रभृतयः
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतं-आनन्द-कणिका।
शिवादि-क्षित्यन्तं, त्रिवलय-तनोः सर्वमुदरे
तवस्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदिचित्रं भगवति (२९)

त्वया यो जानीते रचयति भवत्यैव सततं
त्वयैवे-च्छत्यम्ब! त्वं-असि निखिलाः यस्य तनवः।
गतः साम्यं शम्भुः वहति परमं व्योम बवती
तथाप्येवं-हित्वा, विहरति शिवस्येति-किं इदम् (३०)

पुरः पश्चात्-अन्त-र्बहिर्-अपरिमेयं परिमितं
परं स्थूलं सूक्ष्मं संकुलं-अकुलं-गुह्यं-अगुहम्।
दवीयो नेदीयः सत्-असत्- इति-विश्वं भगवतीं
सदा पश्यन्त्याज्ञां वहसि भवन-क्षोभ-जननीम् (३१)

मयूरवाः पूष्णीव ज्वलन इव तत्-दीप्ति-कणिकाः
पयोधौ-कल्लोल-प्रतिहत-महिम्नीव पृषतः।
उदेत्योदेत्याम्ब, त्वयि सह निजैः तात्त्विक-कुलैः
भजन्ते तत्त्वौघाः प्रशमम्-अनुकल्पं परवशाः (३२)

विधुः-विष्णुः-ब्रह्मा, प्रकृतिर्-अणुर्-आत्मा दिनकरः
स्वभावो जैनेन्द्र-सुगत मुनिर्-आकाशम्-अनिलः.
शिवः शक्तिः-चेति, श्रुति-विषयतां ताम्-उपगतां
विकल्पैर्-एभिस्त्वाम्-अभिद्धति सन्तो भगवतीम् (३३)

प्रविश्य स्वं मार्ग सहजदयया देशिक-दृशा
षट्-अध्व-ध्वान्तौघ-च्छिदुर-गणनातीत-करुणाम्।
परानन्दाकारां सपदि शिवयन्तीं-अपि तनुं
स्वं-आत्मानं धन्याः, चिरं-उपलभन्ते भगवतीम् (३४)

शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी
त्वं-आत्मा दीक्षा, त्वं-अयं-अणिमादिः-गुणगणः.
अविद्या त्वं विद्या त्वम्-असि निखिलं त्वं किम्-अपरं
पृथक्-तत्त्वं त्वत्तो भगवति! न वीक्षामहे-इमे (३५)

असंक्यैः प्राचीनैः-जननि! जननैः कर्मविलयात्
गते जन्मन्यन्त-गुरुवपुषं-असाद्य गिरिशम्।
अवाप्याज्ञां शैवीं क्रम-तनुर्-अपि त्वां विदितवान्
नयेयं त्वत्-पूजा सतुति-विरचनेनैव-दिवसान् (३६)

यत्-षट्-पत्रं कमल-उदितं, तस्य या कर्णिकाख्या
योनिस्तस्याः प्रथितं-उदरे यत् तत्-ॐकारपीठम्।
तस्मिन्-अन्तः कुचभरनतां कुण्डलीतः प्रवृतां
श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि (३७)

भुवि-पयसि कृशानौ मारुते खे शशांके
सवितरि यजमाने प्यष्टधा शक्तिर्-एका
वहति कुचभराभ्यां या विनम्रापि विश्वं
सकल जननिन! सात्वं पाहि मां-इत्यवश्यम् (३८)

आरती

१. ॐ जय गङ्गाधर हर शिव, जय गिरिजाधीश
शिव जय गिरिजाधीश
त्वं मां चालय नित्यं, त्वम् मां पालय शम्भो
कृपया जगदीश......ॐ हर हर हर महादेव॥

२. कैलासे गिरि शिखरे कल्पद्रुमविपिने,
शिव कल्पद्रुमविपिने
गुञ्जति मधुकर पुञ्जे-गुञ्जति मधुकर पुञ्जे
कुञ्जवहने गहने......ॐ हर हर महादेव॥

३. क्रीडां रचियति भूषारञ्जित निजमीशं
शिव रञ्जित निजमीशं
इन्द्रादिक-सुरसेवित-ब्रह्मादिक सुरसेवित
प्रणमति ते शीर्षम्........ॐ हर हर महादेव॥

४. कर्पूरद्युति गौरं पञ्चानन सहितं
शिव पञ्चानन सहितं।
त्रिनयन शशिधर मौलिं-त्रिनयन शीशधर मौलि
विषधर कंठयुतम्........ॐ हर हर महादेव॥

५. सुन्दर जटा कलापं चावकयुतभालं,
शिव पावक शशि भालम्।
डमरू त्रिशूल पिनाकं-डमरू त्रिशूल दिनांक
करधृत नृकपालम्........ॐ हर हर महादेव॥

६. मुण्डै रचयति मालां पन्नगमुपवीताम्

शिव पन्नगमुपवीतम्।

वाम विभागे गिरिजा-वाम विभागे गौरी

रूपमतिललितम्............ॐ हर हर महादेव॥

७. सुन्दर सकल शरीरे कृतभस्माभरणम्

शिव भस्माभरणम्

इति वृषभध्वजरुपं हर शिव शंकर रूपं

तापत्रयहरणम्............ॐ हर हर महादेव॥

८. ध्यानं आरति समये हृदये इति कृत्वा

शिव हृदये इति कृत्वा

रामं त्रिजटानाथं-शम्भो त्रिजटानाथं

ईशं अभिनत्वा..............ॐ हर हर महादेव॥

९. संगीतमेंव प्रतिदिन पठनं यः कुरुते

शिव पठनं यः कुरुते।

शिव सायुज्यं गच्छति-हर सायुज्यं गच्छति

भक्त्या यः शृणुते...........ॐ हर हर महादेव॥